शिबली

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

शिबली

लेखक

जफ़र अहमद सिद्दीक़ी

अनुवादक

जानकीप्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

Shibli : Hindi translation by Janki Prasad Sharma of Zafar Ahmed Siddiqui's monograph in Urdu. Sahitya Akademi, New Delhi, (1990), SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

प्रथम संस्करण : 1990

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 32 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स
दिल्ली 110 032

अनुक्रम

जीवन-वृत्त

वंश और आरम्भिक जीवन

आज़मगढ़ पूर्वी उत्तर प्रदेश में एक प्रसिद्ध ज़िला है। इस क्षेत्र ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रतिभाओं को जन्म दिया है। आज़मगढ़ के आस-पास एक गाँव बिंदोल भी है। उर्दू के नामवर साहित्यकार, आलोचक और शायर अल्लामा शिबली नुअमानी इसी गाँव के मूल निवासी थे। शर्क़ी शासकों के ज़माने में यहाँ के एक व्यक्ति शिवराज सिंह ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। शिबली का जन्म उनके वंश में ही हुआ था।

शिबली की जन्म-तिथि 1 जून, 1857 ई० है। उनके पिता का नाम शेख़ हबीबुल्लाह् था। शेख़ साहब अपने परिवार में सबसे अधिक प्रतिष्ठित, समादृत और सम्पन्न व्यक्ति थे। ज़मींदारी, नील का व्यापार और वकालत उनके अर्थोपार्जन के साधन थे। फ़ारसी शायरी में भी उनकी गहन अभिरुचि थी।

शिबली अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। स्वाभाविक रूप से उनका बाल्यकाल सुख-सुविधाओं में बीता था। एक दिन की बात है, चाँदनी रात थी। आँगन में लेटे हुए थे, लोग उन्हें उठाकर भीतर ले जाना चाहते थे। यह जाते न थे। इतने में किसी ने कहा, "उठो, उठो! पानी आ रहा है।" उन्होंने मुस्कुराकर कहा, "वाह! चाँद तो निकला हुआ है। पानी कैसे बरसेगा?"

शिक्षा

शिबली की माँ एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उनके पिता भी धार्मिक व्यक्ति थे। अतएव शिबली की शिक्षा भी पारम्परिक ढंग पर शुरू हुई। अक्षर-ज्ञान के बाद क़ुरान समाप्त किया। फिर फ़ारसी की पुस्तकें पढ़ीं। इसके बाद अरबी शिक्षा का आरम्भ हुआ। अरबी की प्राथमिक पुस्तकें अपने गाँव बिंदोल से निकल कर जौनपुर और ग़ाज़ीपुर के मदरसों में जाकर पढ़ीं। 1873 ई० के आस-पास शिबली के पिता और गाँव के कुछ गणमान्य व्यक्तियों ने मिलकर आजमगढ़ में एक अरबी मदरसे की नींव डाली। उस समय के सुविख्यात विद्वान्

मौलाना फ़ारुक़ चिरैया कोटी को उसका प्रधान अध्यापक नियुक्त किया गया। इसके साथ ही शिबली की शिक्षा भी इसी मदरसे में होने लगी। उन्होंने अरबी शिक्षा के तमाम आरम्भिक सोपान मौलाना चिरैया कोटी की देख-रेख में इसी मदरसे में तय किये।

मौलाना फ़ारुक़ चिरैया कोटी निरे मुदर्रिस ही न थे। शायरी और संगीत में भी उनकी अच्छी गति थी। उन्होंने शिबली को जहाँ धार्मिक शिक्षा दी, वहीं शायरी और संगीत में भी उनकी अभिरुचि उत्पन्न की। अक्सर उन्हें रात के पिछले पहर उठा देते और पूछते, भैरवी सुनोगे? फिर गाकर बताते।

विद्यानुराग और अध्ययन की रुचि शिबली में आरम्भ से ही थी। विद्यार्थी जीवन में अवकाश के समय अक्सर शहर के एक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर जा बैठते। पुस्तकें उलट-पुलट कर देखते रहते। विशेष रूप से शायरों के दीवान पढ़ते और अच्छी नज़्मों तथा अच्छे शे'रों का आस्वादन करते।

रामपुर और लाहौर की यात्रा

मौलाना फ़ारुक़ चिरैया कोटी के संरक्षकत्व में शिबली धार्मिक शिक्षा पूर्ण कर चुके थे। उनके पिता की इच्छा थी कि अब वह घर-गृहस्थी में उनका हाथ बटायें। लेकिन शिबली ज्ञान की दुनिया से विमुख नहीं होना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि भारत के कुछ प्रसिद्ध मनीषियों की सेवा में प्रस्तुत होकर उनके ज्ञान का लाभ उठाया जाये। माँ पिता की तुलना में संतान पर अधिक कृपालु होती है। शिबली की माँ ने भी उन्हें उदास देखकर उत्साह बढ़ाया और वह घर से निकल पड़े। लखनऊ होते हुए रामपुर पहुँचे। यहाँ मौलाना इरशाद हुसैन रामपुरी के नाम की बड़ी प्रसिद्धि थी। उनकी गणना इस्लामी धर्म-शास्त्र के विशेषज्ञों में होती थी। शिबली ने उनकी सेवा में रहकर एक वर्ष तक इस्लामी धर्म-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। यह ज्ञान के मार्ग पर उनकी पहली यात्रा थी।

रामपुर के बाद शिबली ने लाहौर जाने का निश्चय किया। इस बार परिस्थितियाँ पहले से अधिक प्रतिकूल थीं। पिता की दृष्टि में पहले तो यह यात्रा अनावश्यक थी, दूसरे यात्रा बहुत दूर की थी। लेकिन पहले की तरह बेटे के विद्यानुराग ने पिता के उद्देश्यों पर विजय पायी और मात्र पच्चीस रुपये मार्ग-व्यय लेकर लाहौर के लिए प्रस्थान कर दिया। इस यात्रा की कठिनाइयाँ शिबली की ज्ञान-पिपासा और विद्यानुराग का प्रमाण देती हैं। इसलिए संक्षेप में उनका ज़िक्र करना अप्रासंगिक होगा। आज़मगढ़ से जौनपुर तक इक्के से यात्रा की। इसमें तीन रुपये व्यय हुए। जौनपुर से रेल के ज़रिए सहारनपुर पहुँचे। सात रुपये का टिकट लिया। सहारनपुर से लाहौर की यात्रा भी रेल से की। पाँच रुपये टिकट के चुकाये। लाहौर पहुँचकर एक रुपये महीने में एक कमरा किराये पर लिया।

आठ रुपये में दो महीने तक एक नानबाई की दुकान पर खाने का प्रबन्ध किया। दो माह् बाद हाथ बिल्कुल खाली हो गया। इस परिस्थिति में अपने पिताश्री को पत्र लिखा कि "आपकी अप्रसन्नता के कारण मैंने आपको आर्थिक तंगी के बारे में नहीं लिखा और किसी तरह अब तक का समय बिता दिया। अब हाथ बिल्कुल खाली हो चुका है। आशा है, ध्यान देंगे।"

इस यात्रा से शिबली का उद्देश्य मौलाना फ़ैज़ुल हसन सहारनपुरी, प्रोफ़ेसर ओरियंटल कॉलेज, लाहौर से लाभान्वित होना था। आप उस ज़माने में भारत में अरबी के शीर्षस्थ साहित्यकार थे। अरबी ज्ञान की दृष्टि से वे अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। यही आकर्षण था जो शिबली को आज़मगढ़ से लाहौर ले गया। लेकिन दुर्योग से मौलाना सहारनपुरी के पास शिबली को पढ़ाने के लिए बिल्कुल भी समय नहीं था। अंततः शिबली की जिज्ञासा को देखते हुए मौलाना ने यह व्यवस्था की कि घर से कॉलेज तक की यात्रा के दौरान जितना समय लगता है उसी में वह पढ़ा करें। कुछ दिनों के बाद ग्रीष्मावकाश के सिलसिले में कॉलेज बंद हो गया और मौलाना सहारनपुरी ने वतन के लिए प्रस्थान किया। शिबली भी इस दौरान उस्ताद के साथ-साथ रहे।

संघर्ष का दौर

1876 ई० में शिबली औपचारिक शिक्षा से निवृत्त हो चुके थे। अब प्रश्न यह था कि वे जीवन-यापन के लिए क्या करें? उनके पिता शहर के एक सफल वकील थे। इसलिए वे बेटे को भी अपनी ही राह पर लगाना चाहते थे। लेकिन शिबली वकालत को 'ग़ैर इल्मी' काम समझते थे। विद्या के क्षेत्र से बाहर के कामों में उनकी कोई रुचि न थी। इस तरह लम्बे समय तक उनके जीवन में असमंजस की स्थिति बनी रही। एक ओर मन किताबी ज्ञान से इतर कामों से दूर भागता था, दूसरी ओर पिता के आग्रह और आदेश को टालना भी संभव न था। इसके साथ ही बेकारी और बेरोज़गारी भी एक समस्या बनी हुई थी। ग़र्ज़ यह कि पाँच-छः वर्ष का समय इसी अनिश्चय और असमंजस की स्थिति में बीता।

इस दौरान बहुत-से काम-धंधे करने पड़े। पहले वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की। वकालत शुरू की। लेकिन वास्तव में यह संगति एक प्रकार से कुसंगति ही थी और ज्ञान और साहित्य के जिज्ञासु के लिए क़ानूनी दाव-पेंच के झाड़-झंखाड़ों से मुक्ति पाने में ही सुख का अनुभव हुआ। वकालत के बाद नौकरी के बारे में सोचा। पिता ने कलक्टरी में नक़लनवीस की अस्थायी नौकरी दिलवा दी। कचहरी तक पैदल आना-जाना परिवार की प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। इसलिए अपनी सवारी से आते-जाते थे। दस रुपये मासिक वेतन था। जिसमें से नौ रुपये आवागमन की भेंट चढ़ जाते थे। अतः इस नौकरी को शीघ्र ही नमस्कार कर लिया। इसके बाद

कुछ दिनों कुर्क़ अमीन की असामी पर अस्थायी तौर पर कार्य किया। और यथा-शक्ति अपने दायित्व को निभाने में कोई कमी नहीं की। रमज़ान के महीने में भी लू और धूप की तपिश में रोज़ा रख कर गाँव-गाँव फिरा करते लेकिन अफ़सरों की चापलूसी की कला नहीं आती थी इसलिए नौकरी के प्रशंसा-पत्र की बात तो दूर नियुक्ति-पत्र तक से वंचित रह गये। इसी समय पिता के आदेश से उनके नील के कुछ कारख़ानों की देख-रेख का काम भी किया।

उज्ज्वल भविष्य की आशा

शिबली साहस की प्रतिमूर्ति थे इसलिए संघर्ष के दौर में भी न तो परिस्थितियों से हार मानी और न ही अपने बौद्धिक और साहित्यिक व्यसन से अलग हुए। बल्कि ऐसी स्थिति में जबकि अर्थोपार्जन का कोई साधन उनके पास न था और मामूली नौकरियों के लिए भी वे अयोग्य समझ लिये जाते थे न तो उन्हें अपने उज्ज्वल भविष्य से निराशा हुई और न ही आत्म-विश्वास और मनोबल में कोई कमी आयी। वे अपने मित्रों को पत्रों में बराबर विश्वास दिलाते रहे कि उन्हें असफलताएँ और वंचनाएँ वास्तव में इसलिए मिलीं क्योंकि उनकी योग्यता को ज़माने ने नहीं समझा। वह दिन दूर नहीं, जबकि शिबली, शिबली होंगे।

अलीगढ़ कॉलेज की नौकरी

1883 ई० के आरम्भ में शिबली बस्ती में रहा करते थे। वहीं उनकी जानकारी में यह बात आयी कि मोहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कॉलेज, अलीगढ़ में अरबी के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर का पद रिक्त है। उन्होंने इस नौकरी के लिए आवेदन-पत्र तैयार किया और मौलाना फ़ैज़ुल हसन सहारनपुरी से इसकी अनुशंसा कराई, जो कि सर सैयद अहमद के भी उस्ताद थे। इसके बाद अलीगढ़ पहुँचे और ख़ान बहादुर मोहम्मद करीम डिप्टी कलेक्टर, अलीगढ़ के आवास पर गये। वे उनके पिता के परिचित थे और मोहम्मदाबाद गोहना, ज़िला आज़मगढ़ के निवासी थे। साथ ही कॉलेज की प्रबंध-समिति से भी जुड़े हुए थे। डिप्टी साहब ने उनकी भेंट कॉलेज के सेक्रेटरी मौलवी समी उल्लाह साहब से कराई और उन्होंने शिबली को सर सैयद की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। इस प्रकार, जनवरी 1883 ई० के अंत में अरबी के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर पद पर शिबली की नियुक्ति हो गयी।

अलीगढ़ निवास की उपलब्धियाँ

इसमें कोई संदेह नहीं कि शिबली में प्रतिभा के लक्षण बाल्यकाल से ही विद्यमान थे। रचना और आलोचना की क्षमताएँ उनके स्वभाव का अंग थीं। लेकिन जहाँ तक इन संभावनाओं और क्षमताओं के उजागर होने की बात है यह अलीगढ़ में

सर सैयद की संगति से ही संभव हो सका। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय सर सैयद को ही जाता है। अलीगढ़ में शिबली लगभग सोलह वर्ष रहे। इस दौरान उन्होंने बहुत कुछ सीखा। आधुनिक युग की अपेक्षाओं, आग्रहों और परिस्थितियों को गहराई से समझा। अध्ययन में व्यापकता आयी। लेखन का कौशल सीखा। अपने ज्ञान एवं सभ्यता के दाय के मूल्य और महत्त्व से अवगत हुए। पश्चिम को जाना और पाश्चात्य लेखकों की कृतियों का अध्ययन किया। उनकी न्यूनताओं और विशेषताओं, आलोचना और प्रशंसा के बिन्दुओं को निर्दिष्ट किया। सारांश यह है कि यहीं वे इतिहासकार बने, जीवनीकार बने, लेखक बने, ख़ुत्बा पढ़ने वाले बने, शायर बने बल्कि धर्म-वेत्ता बने और अल्लामा बने। इसलिए अपने एक भाषण में अलीगढ़ निवास के दौरान अर्जित उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयं कहा है :

"हज़रात ! यह सच है कि अगर मेरी ज़िंदगी का कोई हिस्सा इल्मी या तालीमी ज़िंदगी क़रार पा सकता है तो इसकी शुरुआत, इसकी तरक़्क़ी इसका विकास जो कुछ हुआ है, इसी कॉलिज से हुआ है।

मैं यह नहीं कहता कि यहाँ आने से पहले मैंने लेखन के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था। यह सच है कि आज से बहुत पहले मेरी दो-तीन किताबें प्रकाशित हो चुकी थीं लेकिन इनका उद्देश्य क्या था, आपस के धार्मिक विवाद बढ़ाना, मुसलमानों के संगठन में बिखराव पैदा करना, पहले से मौजूद बिखराव को और ज़्यादा बल देना। मैं आज से बहुत पहले फ़ारसी शे'र भी कहता था लेकिन वे किस कोटि के थे ? आप इसका यह अर्थ न लगायें कि मैं अपनी आज की शायरी को उच्च कोटि की समझता हूँ बल्कि अभिप्राय यह है कि अगर आज मेरी शायरी पस्त है तो उस समय की पस्ततर थी। ग़र्ज़ मैंने जो कुछ सीखा है और जो कुछ प्रगति की है वह इसी कॉलेज की बदौलत की है। इस दृष्टि से जिस तरह मैं इस कॉलेज का प्रोफ़ेसर हूँ, उसी तरह इसका एक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी भी हूँ।"

शिबली का उपर्युक्त कथन अतिरंजना रहित है और पूरी ईमानदारी पर टिका हुआ है। जब वे अलीगढ़ आये तो साहित्य जगत में अपरिचित थे। लेकिन पाँच-सात वर्ष बाद ही एक निबन्धकार और लेखक के रूप में देश भर में विख्यात हो गये। फिर जैसे-जैसे समय बीतता गया उनकी सर्जनात्मक क्षमताएँ और सुदृढ़ होती गयीं। उन्होंने अपने श्रेष्ठतम ऐतिहासिक निबन्ध, उच्चस्तरीय जीवनियाँ और अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अलीगढ़ निवास के दौरान ही लिखीं। प्रसंगवश निबन्धों में मुसलमानों की गुज़िश्ता तालीम, अल्जज़िया, तराजिम, कुतुबख़ाना-ए-अस्कंदरया और हक़ूकुलज़िम्मईन (करदाताओं के अधिकार), जीवनियों में

अल्मामून, सीरतुल्नुअमान और अल्फ़ारुक़ तथा काव्य में मस्नवी 'सुबहे उम्मीद' के नाम यहाँ लिये जा सकते हैं।

तस्वीर का दूसरा रुख़

यहाँ इस तथ्य की ओर संकेत करना अनुचित न होगा कि अलीगढ़ कॉलेज की संबद्धता ने शिबली को जहाँ विभिन्न रूपों में लाभ पहुँचाया वहीं कॉलेज और सर सैयद की गतिविधियों में शिबली ने भी सक्रिय भागीदारी की। अपनी रचनाएँ कॉलिज को समर्पित कर दी कि वह उनके प्रकाशन और विक्रय की आय से आर्थिक लाभ उठाये। मस्नवी 'सुबहे उम्मीद' में सर सैयद और उनके अभियान को अत्यन्त सौंदर्यपूर्ण और कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया। इसके अलावा लम्बे समय तक सर सैयद के अन्यतम सहयोगी के रूप में काम करते रहे।

रोम, सीरिया और मिस्र की यात्रा

शिबली अलीगढ़ में सर सैयद के बँगले के पास जिस मकान में रहते थे वहाँ ढलान के कारण पानी भर जाता था। इसके अतिरिक्त अलीगढ़ की जलवायु भी उनकी प्रकृति के अनुकूल न थी। अत: वहाँ स्थायी निवास के परिणामस्वरूप 1892 ई० के आरम्भ में उन पर मलेरिया का आक्रमण हुआ और वे अस्वस्थ हो गये। अस्वस्थता तीन-चार महीने तक बनी रही। मई से कॉलेज में ग्रीष्मावकाश शुरू हुए। शिबली ने स्वास्थ्य लाभ और जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से कश्मीर की यात्रा का कार्यक्रम बनाया। उनका इरादा था कि अप्रैल 1892 के अंत तक वे इस यात्रा पर अवश्य निकल जायेंगे। लेकिन इसी दौरान उन्हें यह पता चला कि उनके सम्माननीय सहकर्मी प्रोफ़ेसर आर्नल्ड अपने वतन जाने की इच्छा रखते हैं। उनके मन में अनायास एक विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों नहीं रोम, सीरिया और मिस्र की यात्रा का कार्यक्रम बना लिया जाय। इस तरह यात्रा का एक बड़ा हिस्सा प्रोफ़ेसर साहब के साहचर्य में व्यतीत हो जायेगा और जलवायु के परिवर्तन के साथ-साथ उन देशों की यात्रा की दीर्घकालिक इच्छा भी पूरी हो जाएगी। बहर-हाल, प्रोफ़ेसर आर्नल्ड से मशविरे के बाद 26 अप्रैल को अलीगढ़ से निकल पड़े और कुस्तुंतुनिया, बेरूत, यरूशलम और क़ाहिरा की यात्रा करते हुए नवम्बर 1892 ई० के आरम्भ में भारत वापस आ गये।

शिबली की यह यात्रा मात्र भ्रमण नहीं थी। जलवायु के परिवर्तन के अति-रिक्त इसके पीछे बहुत-सी योजनाएँ और उद्देश्य भी निहित थे। जिन्हें सुविधा के लिए राजनैतिक और शैक्षिक दो वर्गों में बाँट सकते हैं। अतएव उनके भावी जीवन पर इन स्थितियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम सकते हैं कि इस यात्रा के बाद अंग्रेज़ों के प्रति उनकी घृणा और वितृष्णा में

वृद्धि हुई और तुर्कों के प्रति उनकी आस्था बढ़ गयी। ज्ञान-वृद्धि को दृष्टि से कुस्तुंतुनिया और क़ाहिरा के पुस्तकालयों ने उनके मानसिक क्षितिज को व्यापकता प्रदान की। विभिन्न अनुशासनों और कलाओं की दुर्लभ पांडुलिपियों का अवलोकन किया। इससे उन्हें अमित आत्मिक संतोष प्राप्त हुआ। कई रचनाधीन पुस्तकों के लिए वे अपने साथ आवश्यक सामग्री भी लेकर आए। इसके अतिरिक्त शैक्षिक दृष्टि से भी यह यात्रा उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हुई। इसके दूरगामी परिणाम बहुत अच्छे निकले। अतएव इस यात्रा के दौरान उन्होंने यह धारणा बनायी कि मुसलमानों को ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जिसमें प्राचीन तथा आधुनिक ज्ञान को समान रूप से स्थान दिया गया हो। इसलिए कि मात्र प्राचीन आज की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकता और मात्र आधुनिक ज्ञान धर्म से विमुख कर देगा।

नदवतुलउल्मा से संबद्धता

जिस ज़माने में शिबली रोम, सीरिया और मिस्र की यात्रा से वापस आये, इसके तीन-चार महीने बाद ही 1310 हिज्री तदनुसार 1893 ई. में कानपुर में कुछ साहसी और उदार उल्मा (धर्मशास्त्र वेत्ता) के हाथों नदवतुलउल्मा के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई। जिसका उद्देश्य प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था में संशोधन, इस्लामिया मदरसों के बीच एकता और परस्पर समझ और विभिन्न इस्लामी फ़िरक़ों के बीच ऐक्य-भाव उत्पन्न करना था। शिबली जब इस संस्था के उद्देश्यों और गतिविधियों से परिचित हुए तो यह संस्था अंधकार में प्रकाश की किरण जैसी प्रतीत हुई। उन्हें लगा कि शिक्षा की पुरानी परिपाटी में संशोधन-परिवर्तन की जो रूपरेखा उनके मस्तिष्क में विद्यमान थी, वे उसे नदवतुलउल्मा के मंच से व्यावहारिक रूप दे सकते हैं और अवाम तक पहुँचा सकते हैं और तभी वे इस आंदोलन के एक सक्रिय कार्यकर्ता बन गये। इस समय तक शिक्षा जगत में उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी थी और देश के कोने-कोने में लोग उनके रचनात्मक अवदान से परिचित हो चुके थे। इसलिए नदवतुलउल्मा की ज़िम्मेदारियों ने भी उन्हें हाथों-हाथ लिया और उनकी क्षमताओं में वृद्धि की। इस प्रकार वे सर सैयद और अलीगढ़ आंदोलन से धीरे-धीरे दूर होते गये।

रियासत हैदराबाद का वज़ीफ़ा

अब शिबली को अलीगढ़ निवास में कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी थी। वे चाहते थे कि रियासत हैदराबाद से यदि कोई शैक्षिक साहित्यिक वज़ीफ़ा उनके नाम से जारी हो जाये तो अलीगढ़ की नौकरी से संबंध विच्छेद कर लें। फलस्वरूप अगस्त, 1896 ई. में उन्होंने हैदराबाद की यात्रा की। नवाब वक़ारुल

उमरा, वज़ीरे आज़म हैदराबाद और सैयद अली बिलग्रामी, इंस्पेक्टर जनरल खनिज पदार्थ, हैदराबाद आदि से उनके पुराने संबंध थे। इन लोगों की सदिच्छा, सिफ़ारिश और भाग-दौड़ के फलस्वरूप सितम्बर, 1896 ई. में निज़ाम हैदराबाद मीर मेहबूब अली ख़ान की सरकार से सौ रुपये मासिक का वज़ीफ़ा उनके नाम जारी हो गया। शर्त यह भी थी कि भविष्य में उनकी तमाम रचनाएँ 'सिलसिला-ए-आसफ़िया' में दाख़िल होंगी।

इसके बाद अलीगढ़ कॉलेज से शिबली के नाम-मात्र के संबंध रह गये। पहले दिसम्बर, 1896 से नवम्बर, 1897 तक एक वर्ष का अवकाश लिया। फिर मई, 1898 ई. में दुबारा छः महीने का अवकाश लिया। इसके बाद त्याग-पत्र दे दिया।

हैदराबाद में नौकरी

कॉलेज की नौकरी छोड़ने के बाद शिबली तरह-तरह के संकटों में घिर गये। 1898 और 1899 का अधिकांश दौर भयंकर अस्वास्थ्य में बीता। नवम्बर, 1900 में उनके पिता का निधन हो गया। उनके देहांत के बाद घर की अनेक समस्याएँ उभर आयीं। इन परिस्थितियों से आतंकित होकर उन्होंने एक बार फिर हैदराबाद जाने का मन बनाया। इस यात्रा का उद्देश्य कोई नौकरी खोजना था। सफलता की संभावनाएँ भी बहुत स्पष्ट थीं लेकिन दुर्भाग्य से इसी ज़माने में शिबली के प्रशंसक 'वज़ीर-ए-आज़म' नवाब वक़ार उल उमरा और निज़ाम हैदराबाद मीर मेहबूब अली ख़ान के बीच कुछ मनमुटाव पैदा हो गया और यह दूरी बढ़ती ही चली गयी। शिबली के कतिपय दूसरे मित्र भी, जो वज़ीर-ए-आज़म के कृपापात्र थे, निज़ाम हैदराबाद के कोप-भाजन हुए। इसलिए कई महीने का समय नौकरी की प्रतीक्षा में निकल गया। किसी तरह 22 मई, 1901 ई. को 'निज़ामत सर रिश्ता-ए-उलूमो-फ़ुनून' (साहित्य-कला निदेशक) के पद पर नियुक्ति हो सकी। चार सौ रुपये मासिक वेतन निश्चित हुआ। इस नौकरी से वे फरवरी, 1905 तक जुड़े रहे। इस दौरान उन्होंने 'अल ग़ज़ाली', 'इल्मुल्कलाम', 'इल्मेकलाम' और 'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' आदि अनेक पुस्तकें लिखीं।

नदवतुलउलमा का सचिव-पद

अप्रैल, 1905 ई० में शिबली दारुलउलूम नदवतुलउलमा के शिक्षा सचिव नियुक्त किये गये। इस दायित्व को स्वीकार करने के बाद उन्होंने लखनऊ रहना उचित समझा। नदवा से संबद्धता का यह क्रम 1913 ई. तक रहा। इस दौरान उन्होंने दारुलउलूम नदवा की प्रगति और सुधार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इसी क्रम में प्राचीन पाठ्यक्रम में संशोधन किये और इसकी जगह नवीन

पाठ्यक्रम बनाया। ऐच्छिक भाषा के रूप में हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था की। आधुनिक अरबी भाषा में लेखन और भाषण की दक्षता में वृद्धि करने पर बल दिया। प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की एक कक्षा को शिक्षा देकर रचना तथा संपादन कार्य के लिए तैयार किया। उच्चतर शिक्षा का प्रबंध किया। नदवा के पुस्तकालय को नयी पुस्तकों से समृद्ध किया। 'अलनदवा' के नाम से एक स्तरीय शोध-पत्रिका की शुरुआत की। नदवा की स्थायी आय के नये स्रोत पैदा किये। इसकी स्थायी इमारत के लिए सरकार से अनुदानस्वरूप बड़ी राशि ली। बड़े ही भव्य रूप में शिलान्यास समारोह आयोजित किया और पठन-पाठन के लिए सुंदर भवनों आदि का निर्माण कराया।

लेकिन शिबली और नदवतुलउल्मा के दूसरे व्यवस्थापकों में कुछ बातों को लेकर अंततः अविश्वास और अनबन की स्थिति पैदा हो गयी। इसलिए जुलाई, 1913 ई. को उन्होंने सचिव-पद से त्याग-पत्र दे दिया।

निधन

शिबली अपनी रचना 'सीरतुन्नबी' को व्यवस्थित करने में व्यस्त थे कि उन्हें अपने छोटे भाई मोहम्मद इस्हाक़, वकील इलाहाबाद हाईकोर्ट की बीमारी का समाचार मिला। वे तुरंत इलाहाबाद पहुँचे। लेकिन कुछ ही दिन की बीमारी के बाद 15 अगस्त, 1914 को भाई की मृत्यु हो गयी। इस घटना ने उन्हें अत्यधिक तौर पर हताश और शोकाकुल कर दिया। वे हर तरफ़ से मुँह मोड़कर आज़मगढ़ चले आये। निश्चय था कि यहीं रहकर 'सीरत' के शेष भाग को पूरा करेंगे और साहित्य-रचना और संपादन के उद्देश्य से 'दारुल मुसन्नफ़ीन' नामक एक संस्था की स्थापना करेंगे। इसकी आरंभिक कार्यवाही पूरी भी हो चुकी थी लेकिन नियति ने उनका यह स्वप्न साकार नहीं होने दिया और 18 नवम्बर, 1914 को उनका निधन हो गया।

व्यक्तित्व

मौलाना शिबली का व्यक्तित्व अपने समकालीनों में सर्वाधिक आकर्षक और प्रभावशाली था। इसका कारण यह है कि वे इकहरे और एकायामी नहीं हैं बल्कि बहुमुखी और बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। यह विशेषता उनमें आरंभ से ही विद्यमान थी। इसलिए उन्होंने उस्ताद भी हर प्रकार के बनाये। उनके उस्तादों में एक ओर मौलाना फ़ारुक़ चिरैया कोटी जैसे सुविख्यात मनीषी हैं तो दूसरी ओर मौलाना इरशाद हुसैन रामपुरी जैसे धर्मशास्त्र वेत्ता हैं और तीसरी ओर मौलाना फ़ैज़ुल हसन सहारनपुरी जैसे कवि और लेखक हैं। इन विद्वानों के अलावा शिबली ने प्रोफ़ेसर आर्नल्ड से ज्ञानार्जन किया। पूर्वी भाषाओं में वे अरबी, फ़ारसी और उर्दू तीनों के न केवल जानकार थे बल्कि तीनों पर असाधारण अधिकार था और समान रूप से तीनों में लिखते थे। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य भाषाओं में फ्रेंच का भी कार्य साधक ज्ञान था।

यही बहुतल स्पर्शिनी प्रतिभा उनके लेखन में भी विविध रूपों में प्रतिफलित हुई है। अतएव वे काव्यशास्त्री भी हैं, शायर और आलोचक भी हैं, शास्त्रकार भी हैं, इतिहासकार भी हैं और जीवनीकार भी। इस्लामी शासकों के प्रशस्तिकर्ता भी हैं और यशस्वी सीरत निगार भी। फिर उनके कृतित्व का अलग-अलग मूल्यांकन कीजिए तो हर जगह एक से अधिक आयाम ही नज़र आयेंगे। उदाहरण के लिए उनकी सैद्धांतिक समीक्षा न हाली की तरह सादा, सपाट और शुष्क है और न मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' की तरह रंगीन, आलंकारिक और प्रतीकात्मक है बल्कि दोनों के बीच शिबली एक मध्यम मार्ग खोजते हैं। इसी प्रकार शायर के रूप में वे नज़्मगो भी हैं और ग़ज़लगो भी। उन्होंने क़सीदे भी लिखे हैं और मसनवियाँ भी, रुबाइयाँ भी कहीं हैं और मरसिए भी। फिर गंभीर शायरी भी की है और व्यंग्यात्मक भी। फ़ारसी में भी लेखन किया है, उर्दू में भी। यही स्थिति उनकी आलोचना की भी है। एक ओर उन्होंने हाफ़िज़, सादी और ख़ुसरो जैसे शायरों के साहित्य को समीक्षा का विषय बनाया है तो दूसरी ओर उर्दू शायरों में अनीस और दबीर की शायरी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

जीवन और उसकी वास्तविकताओं और समस्याओं के विषय में भी वे एक

कोण से विचार करने के पक्षधर नहीं थे बल्कि समस्या के हर संभव पक्ष को ध्यान में रखते थे। उदाहरण के लिए उनका विचार था कि कोई प्रजाति (क़ौम) मात्र अतीत का आश्रय लेकर और प्राचीन विश्वासों की परिधि में सीमित रहकर जीवित नहीं रह सकती। साथ ही वे इस बात के भी क़ायल थे कि मात्र आधुनिकता-वाद पर निर्भरता और अपनी मूल्यवान परंपरा से अलगाव की स्थिति भी जागरूक और विवेक संपन्न प्रजातियों या क़ौमों के लिए हितकर नहीं है। इसीलिए वे अपने लेखन और वक्तव्यों में हर जगह पुरातन और आधुनिक, परंपरा और विद्रोह तथा अतीत और वर्तमान के सामंजस्य पर बल देते रहे हैं।

शिक्षा के संबंध में उनका दृष्टिकोण रूढ़िवादी और आधुनिकता के प्रेमी दोनों से भिन्न था। उनका विचार था कि प्राचीन ज्ञान युग की अपेक्षाओं का साथ नहीं दे सकता। और मात्र आधुनिक ज्ञान-विज्ञान धर्म के प्रति उदासीन बना देते हैं। वे अरबी पाठ्यक्रम में युगानुकूल परिवर्तन को आवश्यक समझते थे। धर्मशास्त्र-विदों के लिए अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा आवश्यक तथा हिन्दी और संस्कृत से परिचय को लाभकारी मानते थे। इसी तरह धार्मिक तथा शिष्टाचार संबंधी शिक्षा के अभाव में वे आधुनिक शिक्षा की पाठ्यचर्या को अपूर्ण और अलाभकारी ठहराते थे।

स्त्रियों के संबंध में उनके विचार रोचक और चिंतनपूर्ण थे। उनकी धारणा थी कि स्त्रियों को घर की चारदीवारी में बंद रखना और शिक्षा से दूर रखना अनुचित है। वे चाहते थे कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त करें, सामाजिक प्रक्रिया में भागीदारी करें और लेखन और भाषण की दक्षता प्राप्त करें। बल्कि आगे बढ़कर वे यहाँ तक कहते हैं कि स्त्रियों का छुई-मुई बना रहना और अंतःपुर में बने रहना ही उन पर पुरुषों के अत्याचार का एकमात्र कारण रहा है। इसलिए उन्हें साज-शृंगार की मानसिकता से मुक्त होकर कर्म के दर्शन पर आचरण करना चाहिए। अलबत्ता वे पर्दे के क़ायल थे तथा स्त्री और पुरुष के स्वच्छंद प्रेम-संबंधों को बेहद नापसंद करते थे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1885 ई० में शिबली के सामने ही अस्तित्व में आयी थी। कई कारणों से सर सैयद और अनेक दूसरे मार्गदर्शक इससे सहमत नहीं थे। और विशेष रूप से मुसलमानों को इससे दूर रहने की सीख देते थे। मौलाना शिबली को सर सैयद की इस राय से सहमति न थी। वे इस संस्था से मुसलमानों के जुड़ाव को न केवल हितकर बल्कि अनिवार्य स्वीकार करते थे। अबुल कलाम आज़ाद की राजनीतिक शिक्षा मौलाना शिबली की देख-रेख में हुई थी। कांग्रेस के विरुद्ध मुस्लिम लीग की स्थिति संदिग्ध और अविश्वसनीय थी। उनकी धारणा थी कि यह आंदोलन अंग्रेज़ों की ख़ुशामद, चापलूसी और अवसरवादिता के लिए आस्तित्व में आया है। इस पर उन्हें यह आपत्ति थी कि इसके कार्यकर्ताओं में

सोद्देश्यता, जुझारूपन, त्याग और बलिदान की भावना अप्राप्य है। इस प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी कई नज़्मों में की है।

मौलाना शिबली की रचनाओं का परिवेश और परिभूमि यद्यपि इस्लामी है लेकिन उनके सोच और स्वभाव में धार्मिक विभेद और असहिष्णुता नहीं थी। इस सिलसिले में उनके निबंध 'मुसलमानों की पोलिटिकल करवट' विशेष रूप से पढ़ने योग्य है। इसके अलावा अपने ऐतिहासिक लेखों में भी तैमूर शासकों की न्याय-प्रियता एवं जन-कल्याण की भावना की कहानियाँ सुनाई है वहीं हिन्दू राजे-महाराजों के गुणों की प्रशंसा भी की है।

वैचारिक सोच और लेखन के अनुरूप मौलाना शिबली की निजी ज़िंदगी भी बहुरंगी तथा विविधतापूर्ण थी। वे प्रकृति से सिद्धांतवादी मुसलमान और धार्मिक व्यक्ति थे। वे शराब तथा ऐसी ही अन्य हानि-लाभ की वस्तुओं से सदैव दूर रहते थे। लेकिन संगीत की महफ़िलों और मेले-ठेलों में यदा-कदा भागीदारी कर लिया करते थे। इस प्रसंग में उनके एक अभिन्न मित्र अब्दुल रज़्ज़ाक़ कानपुरी का कथन द्रष्टव्य है। वे लिखते है :

> "ज्ञानवर्द्धन तथा ऐतिहासिक महत्त्व के कारण मौलाना हर क़िस्म के मेले-ठेलों में शरीक़ हुआ करते थे। कानपुर में रामलीला का मेला हो रहा था। मौलाना लखनऊ से एकाएक तशरीफ़ लाये और फ़रमाया कि आज रावण जलाया जायेगा और इस ड्रामे का यह आख़िरी सीन है। मैं भी देखना चाहता हूँ और कानपुर से बेहतर यह मेला कहीं नहीं होता है। मैंने अर्ज़ किया कि यह आपकी शान के ख़िलाफ है। कुछ नाराज़ होकर बोले, इतिहास से दिलचस्पी रखते हो तो हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक सभाएँ और नाटक ज़रूर देखो। क्योंकि वहाँ इनके व्यावहारिक रूप दिखाये जाते हैं। मैंने निहायत ख़ामोशी से एक पालकी गाड़ी किराये पर मँगाई...गाड़ी में बैठकर 'फ़ैज़ी' की रामायण के प्रसंगानुकूल शेर सुनाये और लगभग चार घंटे बाद मेला ख़त्म हो गया।"

उनके परिचित और मित्र वर्ग में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग थे। उनमें नवाब और अमीर भी थे, यथा—वक़ारुल उमरा, सदर यार जंग, सैयद अली बिलग्रामी, सैयद हुसैन बिलग्रामी। और उपदेशक और धार्मिक निष्ठाओं वाले सज्जन भी थे, यथा—मौलाना मोहम्मद अली मुंगेरी, मौलाना सैयद अब्दुल हई हसनी। धर्मशास्त्रविद भी थे, यथा—मौलाना अब्दुल्ला सिंधी, मौलाना अब्दुल हक़ हक़ानी। साहित्यकार भी थे, यथा—हाली, नज़ीर अहमद, मेहदी अफ़ादी, अकबर इलाहाबादी और दाग़ देहलवी। यही नहीं, इसमें कई महिलाएँ भी शामिल थीं जैसे अतिया फ़ैज़ी।

मौलाना शिबली के व्यक्तित्व का यह पहलू भी उल्लेखनीय है कि वे लेखकों

के प्रेरणा स्रोत तथा प्रतिभाओं के निर्माता थे। अतएव उनके साहचर्य का लाभ उठाकर लेखक बननेवालों की सूची बहुत लम्बी है और प्रेरणास्पद भी। कुछ नाम उदाहरण के लिए लिये जा सकते हैं—ख़्वाफ़ा गुलामुल सक़लीन, मौलवी अब्दुल हक़, हसरत मोहानी, सज्जाद हैदर यल्दरम, ज़ज़र अली खान। ये सब अलीगढ़ प्रवास के शागिर्द और मित्र थे। नदवा से लाभान्वित होने वाले कुछ लोगों के नाम इस प्रकार हैं—मौलाना सैयद सुलेमान नदवी, मौलाना अब्दुल सलाम नदवी, मौलाना ज़िया उल हसन अल्वी, मौलाना अब्दुल बारी नदवी। इनके अतिरिक्त मौलाना से प्रभाव ग्रहण करने वाले व्यक्तियों में अब्दुल्ला अमादी, अबुल कलाम आज़ाद और अब्दुल माजिद दरियाबादी के नाम भी शामिल हैं।

मौलाना शिबली के व्यक्तित्व का एक विशिष्ट पहलू यह भी है कि वे लेखन और संपादन की अद्‌भुत क्षमता से संपन्न होने के साथ-साथ साहित्यिक पत्रों पर सोचने, काम कराने और योजनाएँ तैयार करने में भी दक्ष थे। उनका मस्तिष्क साहित्य-सेवा के नये-नये रूप खोजता रहता था। अतएव अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू की सेक्रेटरीशिप, नदवतुल उल्मा का दायित्व, मासिक 'अलनदवा' का प्रकाशन, ज्ञान-विज्ञान की प्रदर्शनियों का प्रबंध और महत्त्वपूर्ण कृतियों के प्रकाशन हेतु एक संस्थान, और 'दारुल मुसन्नफ़ीन' की स्थापना की रूप-रेखा को इस प्रसंग में उदाहरण स्वरूप रखा जा सकता है।

क़द-काठी

मौलाना शिबली के प्रिय शिष्य सैयद सुलेमान नदवी ने उनका हुलिया इस तरह बयान किया है :

> "उनका क़द ऊँचा था, माथा चौड़ा, आँखें बड़ी, नाक लम्बी नुकीली, मुँह बड़ा, चेहरा लम्बा खड़ा, रंग गेहुँआ; हाथों की उंगलियाँ लम्बी, भवें घनी और लम्बी, दाढ़ी न लम्बी न छोटी; बीच की।"

1887 में मोहम्मडन एजुकेशनल कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर जब वे अपना लेख पढ़ने के लिए खड़े हुए। अब्दुल रज़्ज़ाक़ कानपुरी ने इस समय का सिर से लेकर पाँव तक का वर्णन इन शब्दों में किया है :

> "सैयद साहब (सर सैयद अहमद ख़ान) ने कांफ्रेंस के सेक्रेटरी की हैसियत से मौलवी साहब से आग्रह किया कि मौलाना अब आप अपना वक्तव्य शुरू करें। अत: मौलाना अपनी जगह से उठकर मंच पर तशरीफ़ लाये और ज़र्द रंग हजाज़ी कारचोबी रूमाल सिर से हटाया। उस समय मालूम हुआ कि आपकी उम्र लगभग पैंतीस साल की होगी और चेहरे पर गोल स्याह दाढ़ी थी। आँखों में ख़ास क़िस्म की चमक और पेशानी पर तेज झलकता था और कभी-कभी बायीं भौंह भी फड़कती थी। नये चलन की गर्म अचकन थी और

सिर पर पारसीनुमा काली ऊँची टोपी जो लगभग आधी रूमाल मे छुपी हुई थी।"

मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी ने लिखा है :

"मैंने बहुत इब्तिदाई ज़माने में उनको अलीगढ़ की नुमायश के मौक़े पर कुश्ती के दंगल में देखा था। काफ़ी लम्बे-तगड़े थे। सिर के बाल परेशान एक स्याह गोल टोपी से बाहर निकले हुए थे।"

विभिन्न बीमारियों के कारण शिबली का स्वास्थ्य समय से पहले गिर गया था। बाल अधेड़ अवस्था में ही सबकी भाँति सफ़ेद हो गये थे। मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी के शब्दों में, "सत्तर और अस्सी बरस क्या मानी, वे अभी साठ बरस के भी न हो पाये थे कि बड़े मियाँ बन गये थे।"

वेशभूषा में आमतौर पर गाढ़ी मलमल का कुर्ता, किसी क़दर चौड़ी मोहरी का सफ़ेद छालटी का पाजामा और ढीली शेरवानी पहनते थे। टोपी ऊनी या सादा कपड़े की स्याह रंग की होती थी। जूता सुर्ख़···सलीमशाही। बाद में बूट भी पहनने लगे थे। जाड़ों में रूईदार बंडी, रूईदार दगला और गर्म कश्मीरी रूमाल का इस्तेमाल करते थे। कभी-कभार सरज का पायजामा भी पहन लिया करते थे। जलसों और सम्मेलनों के अवसर पर इमामा भी बाँधते थे और चुग़ा भी पहनते थे।

दिन-चर्या

मौलाना शिबली प्रात: जल्दी उठने के आदी थे। प्राय: पिछले पहर उठ जाते। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही क़ुरान का मौखिक पाठ किया करते। फिर अरबी शे'र जो याद आ जाते गाकर पढ़ते। सबेरा हो जाने पर नमाज़ से निवृत्त होकर चाय पीते। फिर नित्य-कर्मों से निवृत्त होते। इसके बाद लिखने की मेज पर आ जाते और आठ-नौ बजे तक निरंतर लेखन-कार्य में व्यस्त रहते। यह सिलसिला दस बजे तक जारी रहता था। दोपहर का खाना दस बजे के आसपास खा लिया करते थे। इसके बाद चार बजे तक का समय पुस्तकों से आवश्यक सामग्री एकत्रित करने में व्यतीत हो जाता। चार बजे के बाद से मिलने वालों का सिलसिला शुरू हो जाता था। इसमें मित्र और परिचित भी होते और विद्यार्थी एवं नये लेखक भी। यह समागम साहित्यिक मनोविनोद से पूर्ण होता। मौलाना शिबली इस समय वाग्मिता की साक्षात् प्रतिमूर्ति बने हुए ज्ञान का भंडार लटाते रहते थे। मग़रिब के समय यह मजलिस बर्ख़ास्त हो जाया करती। रात का खाना वे जल्द ही खा लेते और नौ बजे तक सोने के लिए लेट जाते थे। सोते समय एकांत और शांति का विशेष ध्यान रखते। यहाँ तक कि शयन-कक्ष के आस-पास किसी तरह की चूँ-पटाक उन्हें असह्य थी।

सहजता एवं कोमलता

मौलाना शिबली स्वभाव से सहज-वृत्ति के व्यक्ति थे। वेशभूषा की तरह खाने-पीने में ज़्यादा आभिजात्य के हामी नहीं थे लेकिन इस बात का अवश्य ध्यान रखते कि खाना उम्दा पका हुआ हो। कहा करते थे: "मैं उम्दा पकी हुई दाल खा सकता हूँ लेकिन बुरी तरह पका गोश्त नहीं खा सकता।" कपड़े हमेशा स्वच्छ पहनते थे और हफ़्ते में दो-तीन बार बदलते थे। उनका रिहायशी कमरा सादगी के बावजूद निहायत साफ़-शफ़्फ़ाफ़ रहता था। पान के अभ्यस्त न थे और कोई पान खाकर उनके मकान या सहन में थूक देता तो सख़्त नाराज़ होते और स्वच्छता में अतिशयता से काम लेते। दुर्गंध से भी बेहद घृणा थी। इसीलिए शराब पीने वालों से दूर भागते थे। लेखन के लिए सफ़ेद फुलस्केप काग़ज़ का प्रयोग करते थे। क़लम-दवात और निब भी उम्दा क़िस्म का इस्तेमाल करते। इत्र भी हल्की सुगंध वाला पसंद था। चाय में दूध का प्रयोग अनावश्यक समझते थे और हमेशा बिना दूध की चाय पीते।

आत्म-स्वाभिमान

मौलाना शिबली में आत्म-स्वाभिमान की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। अपने जीवन के आरंभिक दौर में वकालत, अमानत और नक़ल नवीसी आदि की नौकरियों में उनकी असफलता का एक मुख्य कारण यह भी था कि वे इन कामों को आत्म-गौरव और आत्माभिमान के विरुद्ध समझते थे। अलीगढ़ की अध्यापकी को भी वे शुरू में अपनी गरिमा के अनुकूल नहीं मानते थे। इस समय उनका वेतन चालीस रुपये मासिक था इस कारण जहाँ कहीं भी उन्हें अपनी साधनहीनता का एहसास होता, अत्यधिक क्षुब्ध होते। इससे संबंधित एक घटना का उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है:

> "एक बार स्ट्रेची हाल में जलसा हुआ और लोग वेतन के अनुसार क़तारों में आगे-पीछे बिठाये गये और उस समय मेरी कुर्सी बहुत पीछे रही। तो मैंने यह दृश्य देखकर गर्दन झुका ली और आँखों से झर-झर आँसू निकल पड़े।"

अमीर और नवाबों की ख़ुशामद, दरबारदारी और प्रशस्ति आदि से सदैव दूर भागते थे। आर्थिक उपहारों और नज़रानों को भी आत्म-स्वाभिमान के विरुद्ध समझते और इस नाम से कभी कोई राशि स्वीकार न करते थे।

एक बार नदवतुलउलमा के लिए चंदा अभियान का अवसर आया तो यह शे'र पढ़ा—

आशिक़-ए-ताज़ा हूँ और वस्ल की अव्वल शब है
शर्म से कह नहीं सकता हूँ कि क्या मतलब है?

अति संवेदनशीलता

मौलाना शिबली अत्यधिक संवेदनशील थे। सर्दी हो या गर्मी, हर्ष हो या विषाद, मित्रता हो या शत्रुता हर एक का दबाव या प्रभाव उन पर शीघ्र ही प्रकट हो जाता था और अत्यंत चरम रूप में। शायद इसके पीछे उनके राजपूती संस्कार थे। मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी ने लिखा है:

"एक दिन एक अधमरी भिड़ ने उनके पाँव पर डंक मार दिया। इस कदर व्याकुल हुए कि मुझे आश्चर्य होने लगा। इतना समय बीत जाने के बाद भी मैं उनकी उस बेचैनी को भुलाये नहीं भूल सकता।"

सर्दी चाहे कितनी ही हो पानी हमेशा बर्फ़ का ही पीते थे। यहाँ तक कि रात का बासी पानी भी उनकी कसौटी पर पूरा न उतरता था। मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी ने इस सिलसिले में एक दिलचस्प वाक़्या बताया है। लिखते हैं:

"एक बार क्या हुआ कि सन् 1913 के अन्तिम सप्ताह दिसम्बर में लखनऊ में रात को मेरे घर पर भोजन के लिए पधारे।...खाने के बीच मौलाना ने पानी की इच्छा व्यक्त की और जब पानी आया तो पूछा, 'बर्फ़ नहीं है?' इतने कड़कड़ाते जाड़े में रात के समय कोई बर्फ़ की कल्पना भी कर सकता था? और इस समय तो खोजने पर भी अमीनाबाद में बर्फ़ न मिलती। मैं शर्मिंदगी से पानी-पानी हो गया।"

दूसरी ओर सर्दी भी ज्यादा महसूस होती थी। मामूली रज़ाई, कम्बल और लिहाफ़ आदि से उनका काम न चलता था। गर्मी का प्रभाव भी बहुत जल्द होता था। अंतिम समय में गर्मी के प्रभाव से बचने के लिए बम्बई चले जाया करते थे। खाने में उन्हें तेज़ नमक पसंद था। भोजन के समय इसे दस्तरख़्वान पर रख लेते और ऊपर से खाने में डालते। मीठी वस्तुएँ भी ऐसी भाती थीं जो गले के अनुकूल हों। मिस्री की डलियाँ चबाना और शक्कर के दाने मुँह में डालते रहना, उनका एक रोचक व्यसन था। एक बार की घटना है, बीमार थे। कुछ मित्र मिलने के लिए चले गये। वे लिहाफ़ ओढ़ हुए थे, मुँह बंद था, लेकिन दाँतों के चलने की कुछ आवाज़ आ रही थी। पूछा गया, आप क्या कर रहे हैं? जवाब दिया, कुछ नहीं। लिहाफ़ उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि सीने पर शकर की एक तश्तरी रखी हुई है और वे उसमें से थोड़ी-थोड़ी शकर मुह में डालते जाते हैं।

व्यंग्य-क्षमता

मौलाना शिबली के स्वभाव में व्यंग्य-विनोद की विशेषता विद्यमान थी। प्रसन्न मन:स्थिति में उनकी विनोदप्रियता मुखर होती थी और अप्रसन्न मन:स्थिति में वे खूब मज़ाक करते थे। मई 1907 ई. की बात है, आजमगढ़ में ठहरे हुए थे। उस समय वे 'शैरुल अजम' पुस्तक लिख रहे थे। 'फ़िरदौसी' के 'शाहनामा' पर समीक्षा कर रहे थे। इसी बीच लेखनी हाथ से रखी और भीतर ज़नानखाने में तशरीफ़ ले गये। तख़्त पर बैठे ही थे कि संयोग से वहू के हाथ से बंदूक़ चल गयी। उनका पैर निशाना बना। परिणाम स्वरूप एक पैर पिंडली से आधा काट कर अलग कर दिया गया। यह एक भीषण घटना थी। लेकिन मौलाना शिबली के लिए यह व्यंग्य और मनोविनोद का एक विषय बन गया। अत: अलीगढ़ में एक वार्षिक समारोह में विलम्ब से पहुँचने का यही कारण बताया। फिर कहने लगे, "आशा है, मेरे इस बहाने को बेकार का बहाना न समझा जायेगा!"

अकबर इलाहाबादी ने एक बार उन्हें भोजन पर आमंत्रित किया। तो इस पर मौलाना ने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए लिखा :

आज दावत में न आने का मुझे भी है मलाल,
लेकिन असबाब कुछ ऐसे हैं कि मजबूर हूँ मैं।
लेकिन अब मैं वो नहीं हूँ कि पड़ा फिरता था,
अब तो अल्लाह के अफ़ज़ाल से तैमूर हूँ मैं।।

मेहदी अफ़ादी, मौलाना शिबली की भाषा-सामर्थ्य के बड़े ही प्रशंसक थे। पत्रों में बराबर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते रहते थे। एक समय 'सिला-ए-आलम' पत्रिका के सपादक मीर नासिर अली को भी शिबली के भाषा-व्यवहार की विशिष्टता को सराहते हुए अनेक पत्र लिखे। यही नहीं बल्कि एक पत्र में मौलाना पर कुछ कटाक्ष भी कर दिया। मीर साहब ने ये पत्र प्रकाशित कर दिये। जब मौलाना शिबली की उन पर नज़र पड़ी तो मेहदी को लिखा :

"मेहदी! मैं तुझको पक्का मुसलमान समझता था। मगर अफ़सोस कि तुम बुतपरस्त निकले।"

शायरी और संगीत की अभिरुचि

मौलाना का सौंदर्य-बोध व्यापक था। ललित कलाओं और शायरी की बारीकियों का आस्वादन करना और उन पर टीका-टिप्पणी करना उनके स्वभाव का अंग था। उन्हें सचमुच इन पर राय देने का अधिकार था। शायरी और संगीत दोनों की अभिरुचि उनमें मौलाना फ़ारुक़ चिरैयाकोटी के साहचर्य से पैदा हुई थी। जो स्वयं शायर भी थे और संगीत में भी अच्छी पहुँच रखते थे।

मौलाना शिबली के समकालीनों का कहना है कि फ़ारसी और उर्दू के हज़ारों शे'र उनकी स्मृति में सुरक्षित थे। तुरंत और प्रसंगानुकूल शे'र पढ़ने में उनकी कोई तुलना न थी। सामान्यतया जब वे शे'र सुनाते तो उनके गुण-दोषों का विवेचन भी करते जाते थे। अपने अनौपचारिक और आत्मीय मित्रों के बीच उनकी यह क्षमता चरम-स्थिति पर पहुँच जाती थी। इस क्रम में अब्दुल रज़्ज़ाक़ कानपुरी ने एक रोचक प्रसंग का उल्लेख किया है :

"एक वर्षा ऋतु में आप कानपुर पधारे। और हाजी किफ़ायत उल्लाह ताजिर चोब लठ के अतिथि बने। हाजी साहब का बंगला गंगा के किनारे है। मुझे याद किया गया। मैं दफ़्तर से उठकर पाँच बजे सेवा में हाजिर हो गया। बोले कि एक नाव का प्रबंध करो। कुछ सुरुचि संपन्न मित्रों को साथ लिया जाये और कल शाम की चाय नदी की तरंगों में हो और अगर कोई अच्छा क़व्वाल मिल जाये तो क्या कहना !"

"मैंने अपने मित्र मुंशी मोहम्मद अमीन ख़ाँ तहसीलदार कानपुर के ज़रिए नाव का प्रबंध किया और कुछ अच्छे मित्रों को पत्र लिखकर एकत्र किया। क़व्वाल तो न मिल सका लेकिन मंशी रहमतुल्लाह 'रुअद' आदि दो-तीन अच्छे शायर और ज़िंदादिल मित्र साथ थे। नाव बँगले से कुछ दूर ले जाकर ऊँचाई से छोड़ दी और यह निश्चय किया कि जो शे'र पढ़े जायें वे परिस्थिति के अनुकूल हों। याने कोई शे'र वर्षा ऋतु और बादल, हवा, बिजली और बिजली की कड़क से ख़ाली न हों। इसलिए 'रुअद' से शायरी की शुरुआत हुई···आधा घंटे के बाद यकायक पानी बरसने लगा। मुशायरा बदस्तूर चलता रहा और अधिकांश शे'र फ़ारसी में पढ़े गये। मौलाना ने जितने भी शे'र पढ़े उनमें से कोई ऐसा न था जो समंदर, दरिया, मल्लाह तूफ़ान आदि शब्दों से रहित हो···बारह बजे रात तक इस महफ़िल का आनंद रहा।"

मौलाना शिबली ने संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। फिर भी वे इस कला से इस सीमा तक परिचित थे कि सुरे और बेसुरे की तमीज़ आसानी से कर लेते थे। वे अपने एक पत्र में स्वयं लिखते हैं :

"गाना मैं स्वयं नहीं जानता, लेकिन समझ सकता हूँ। यानी जो गाना संगीत के नियमों के विरुद्ध होगा, मैं बता दूँगा कि इसमें क्या दोष है ? बम्बई में इस कला को अधिकांश लोग नहीं जानते। यहाँ तक कि जिनका यह कारोबार-सा है, वे भी जाहिल ही हैं।"

अध्ययन की व्यापकता

ज्ञान के प्रति निष्ठा शिबली की नस-नस में रची-बसी थी। वे अध्ययन के शौक़ीन

नहीं वल्कि लोभी थे। उनका अधिकतर समय पुस्तकों के पन्ने उलटने में व्यतीत होता था। साहित्य, इस्लाम-धर्म, दर्शन, इतिहास और ललित कलाओं से संबंधित असंख्य पुस्तकें उनकी दृष्टि से गुज़र चुकी थीं। मुद्रित ग्रंथों के अतिरिक्त प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियों का भी अवलोकन करते रहते थे। उनकी कोई संगति साहित्यिक विचार-विमर्श से ख़ाली न होती थी। लेखक और उनकी कृतियों के मूल्य एवं महत्त्व से सुपरिचित थे। उनसे चर्चा करनेवाला किसी भी स्तर का हो, उनकी वातचीत से आनंदित होता और प्रभावित भी।

वर्णन-क्षमता और संतुलित दृष्टि

शिवली की वर्णन-शैली में अप्रतिम सौंदर्य था। उनके विरोधी भी इस वात की प्रशंसा करते पाये जाते थे कि वे अपने से वातचीत करनेवाले को वहुत शीघ्र ही सहमत कर लेते थे। वे जहाँ भी उपस्थित होते अपनी वाक्-पटुता के कारण शिरोमणि होते। किसी विषय की भूमिका, तर्क-शृंखला और अपने प्रयोजन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में उन्हें असाधारण दक्षता प्राप्त थी। उनके एक मित्र मौलाना सैयद अब्दुल हई हसनी ने लिखा है कि उनकी वर्णन-शैली प्रायः इस तरह की होती जैसे उनके सामने बैठा व्यक्ति उनसे सहमत नहीं है इसलिए वे अपना प्रयोजन वताने के लिए तर्क पर तर्क देते जाते। ताकि श्रोता के सामने सहमत होने के अलावा कोई चारा न हो। यद्यपि कभी-कभी उनके तर्क कमज़ोर भी हुआ करते थे या उनका दृष्टिकोण वातचीत करनेवाले व्यक्ति से ही लिया हुआ होता था।

नदवतुलउल्मा के सचिव-पद के ज़माने में एक वार उनके विरोधी सदस्यों ने उनकी उपेक्षा करने के उद्देश्य से एक आयोजन किया। कार्यवाही शुरू होने लगी तो उन्होंने सदस्यों को संबोधित करके कहा, यह विशेष वैठक है या प्रबंध समिति की वैठक ? किसी ने उत्तर दिया कि विशेष वैठक। उन्होंने कहा कि नदव-तुलउल्मा के संविधान में विशेष वैठक की यह परिभाषा की गयी है कि प्रवंध समिति ने इसे किसी विशेष उद्देश्य के लिए तिथि निश्चित करके आमंत्रित किया हो। और देश के प्रतिष्ठित और सम्माननीय व्यक्तियों को इसमें भागीदारी के लिए आमंत्रित किया गया हो। लेकिन यहाँ तमाम नियमों की उपेक्षा की गयी है। इस पर कुछ लोगों ने कहा कि ठीक है हम इसे प्रवंध समिति की बैठक में परिवर्तित कर देते हैं। मौलाना शिवली ने कहा कि प्रवंध समिति की वैठक के लिए यह आवश्यक है कि इसके आयोजन से पंद्रह दिन पूर्व सदस्यों को इसकी लिखित सूचना भेजी गयी हो। यहाँ ऐसी कोई सूचना नहीं है। इस आपत्ति पर सब स्तब्ध रह गये और वैठक निरस्त हो गयी।

कृतित्व

मौलाना शिबली की गणना उर्दू भाषा के मूर्धन्य लेखकों में होती है। उनकी रचनाएँ हमारी भाषा की मूल्यवान धरोहर हैं। उनका गद्य चिंतनपूर्ण, सरस और ललित होता है। विषय के अनुसार उनकी कृतियाँ इतिहास, जीवनी और सीरत के वर्ग में आती हैं। इसके अतिरिक्त शायरी की आलोचना भी उन्होंने की है। आगे के पृष्ठों में अलग-अलग शीर्षकों के अंतर्गत उनके कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

इतिहास लेखन :

यों तो लेखन की अभिरुचि शिबली में आरंभ से ही विद्यमान थी। औपचारिक शिक्षा पूर्ण करने के बाद तथा अलीगढ़ की नौकरी से पूर्व ही उनकी कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। लेकिन कथ्य या शैली की दृष्टि से उनमें कोई नवीनता नहीं थी। इनकी शैली वर्णनात्मक थी और प्रायः धार्मिक विषयों को ही इनमें उठाया गया था। इसलिए इन पुस्तिकाओं के लेखक के रूप में मौलाना शिबली को विशेष ख्याति नहीं मिल सकी। अलबत्ता अलीगढ़ पहुँचने के बाद जब उन्होंने इतिहास का अध्ययन किया और इतिहास विषयक उनकी पुस्तकें पाठकों के सामने आती चली गयीं तो वे बुद्धिजीवी वर्ग में बहुत जल्द विख्यात और लोकप्रिय हो गये। इतिहास के प्रति आकृष्ट होने का श्रेय सर सैयद अहमद के पुस्तकालय को है। यह इतिहास, भूगोल आदि से संबंधित सैकड़ों मौलिक और अनूदित ग्रंथों का भंडार था। इसमें आधुनिक यूरोपीय इतिहासकारों के ग्रंथों के अनुवाद भी थे। मौलाना ने दोनों तरह की पुस्तकों का बड़ी ही रुचि और लगाव के साथ अध्ययन किया। स्वयं उनके शब्दों में :

> "सर सैयद ने मुझे अपने पुस्तकालय की पुस्तकें देखने की सामान्य अनुमति दे दी थी तो मेरा यह हाल था कि अल्मारियों के आगे घंटों खड़ा रहता। कभी थक कर ज़मीन पर उकड़ूँ बैठ जाता। सर सैयद ने यह स्थिति देखी तो सामने कुर्सी रखवा दी।"

इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप एक ओर उन्हें मुसलमानों की शैक्षिक एवं

साहित्यिक तथा आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों से निकट का परिचय प्राप्त हुआ। उन्हें अपने अतीत के गौरव और समृद्धि पर गर्व हुआ। दूसरी ओर यूरोपीय लेखकों के ग्रंथों ने उन्हें यह सिखाया कि वर्तमान युग में लेखन की दिशा क्या होना चाहिए? किसी जाति का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक इतिहास किस तरह लिखा जाना चाहिए आदि-आदि। अतएव अब उन्होंने इस्लाम और मुसलमानों के इतिहास का इस दृष्टि से अध्ययन आरंभ किया कि वे उसके उज्ज्वल पक्षों को आधुनिक संदर्भों में ढाल कर दुनिया के सामने प्रस्तुत कर सकें।

पहले-पहल उन्हें ध्यान आया कि तमाम इस्लामी राज्यों का इतिहास लिखें। बाद में यह योजना 'तारीख़ बनी अब्बास' में बदल गयी। फिर सिमट-सिमटाकर 'हीरोज़ आफ़ इस्लाम' में सीमित होकर रह गयी। इस दौरान उन्होंने अब्बासी-युग के इतिहास के कुछ प्रारूप भी तैयार कर लिये। लेकिन वास्तव में उनकी रुचि पुस्तकें पढ़ने में ही अधिक रही। लगभग पाँच वर्ष के निरंतर अध्ययन के बाद आधुनिक स्तर और अभिरुचि के अनुसार उनकी पहली उल्लेखनीय कृति 'मुसलमानों की गुज़िश्ता तालीम' के नाम से प्रकाशित हुई। इसकी विषय-वस्तु के बारे में संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

मुसलमानों की गुज़िश्ता तालीम

मौलाना शिबली ने यह विस्तृत निबंध सर सैयद के आंदोलन पर दिसंबर 1887 में अलीगढ़ में होने वाले मोहम्मडन एजुकेशनल सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन के लिए लिखा था। उन्होंने इसे सार्थक और प्रभावी बनाने में कोई क़सर नहीं छोड़ी थी। इसलिए सामान्य रूप से इसकी खूब प्रशंसा हुई। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी के अनुसार इसी कृति के साथ मौलाना शिबली की एक लेखक के रूप में ख्याति के द्वार खुले।

कृति की विशेषता का अनुमान तो इसको पढ़ने के बाद ही लगाया जा सकता है लेकिन हम आगे की पंक्तियों में इसके विषयों का परिचय दिये देते हैं जिससे इस कृति की व्यापकता और गहराई का एक चित्र हमारे मस्तिष्क में उभर सके :

क़ुरान ने अरब की भाषा-कला पर क्या प्रभाव छोड़ा, धर्मशास्त्र, धार्मिक कर्त्तव्य, इल्म कलाम, हदीस, धार्मिक इतिहास लेखन, दर्शन, व्याकरण, हज़रत मोहम्मद साहब के युग के विद्वान, लेखन एवं संकलन का आरंभ, वर्णन की विधा, अलहयात और क़ुरान, मुसलमानों ने दूसरी जातियों से क्या सीखा, यूनानी दर्शन-ग्रंथों के अनुवादक प्रायः ईसाई थे, विभिन्न युगों के प्रयत्न, मंसूर अब्बास का युग, हारुनुल रशीद का युग, मामूनुल रशीद का युग, मुतवक्किल बिल्लाह, अनुवादकों का वेतन, दर्शन और वैद्यक के अतिरिक्त और विद्याओं के अनुवाद क्यों नहीं हुए, अनुवादों के गुण और दोष, मुसलमानों ने अनुवाद का काम दूसरों से क्यों लिया,

मदरसों की इब्तिदा, निज़ामिया बग़दाद, बग़दाद के मदरसे, सलाउद्दीन और नूरुद्दीन का युग, सलाउद्दीन के युग में विद्वानों का वेतन, उसकी संपत्ति, नूरुद्दीन का ख़ानदान, चिराकसा के युग में मदरसों की प्रगति, इब्नुल नासिर का मदरसा जिसके निर्माण में चौदह लाख रुपये ख़र्च हुए, हिंदुस्तान, मदरसा हर्बिया, यूरोप में इस्लामी मदरसे, प्राचीन शिक्षा, शिक्षा की विधि, उच्च शिक्षा की शर्तें, विचार-विमर्श, मदरसों का ज़माना, इमला का तरीक़ा जाता रहा, मदरसों का धार्मिक प्रभाव, शिक्षा के पतन के कारण, जातीय विशेषताएँ, सत्ता की क्रांति का प्रभाव, जब राजनैतिक तालीम नहीं थी आदि-आदि।

इस निबंध के अध्ययन से महसूस होता है कि मौलाना शिबली की रचनात्मक क्षमताएँ पहली बार इस कृति में पूरी गंभीरता और प्रभावशीलता के साथ प्रकट हुई हैं। शोध और अन्वेषण की उत्कट इच्छा पंक्ति-पंक्ति से प्रकट होती है। इतिहास, भूगोल और धर्मशास्त्र आदि से संबंधित लगभग तीन दर्जन पुस्तकों को इसमें संदर्भित किया गया है। पाश्चात्य लेखकों के ग्रंथों के संदर्भ और अंश भी इसमें जगह-जगह देखने को मिलते हैं। इस निबंध से प्रभावित होकर अब्दुल हलीम 'शरर' ने एक विस्तृत समीक्षा लिखी थी जिसका समापन इन पंक्तियों के साथ होता है :

> "मौलवी शिबली साहब ने इस पुस्तक के ज़रिए अपना देखा हुआ एक मोहक स्वप्न हमें दिखा दिया है और हम इतने अधिक मुग्ध हैं कि आत्म-विस्मृति की स्थिति में आकर यह चाहते हैं कि हम यही स्वप्न अपनी जाति को भी दिखा दें।"

अल जज़िया

'मुसलमानों की गुज़िश्ता तालीम' के बाद यह मौलाना शिबली की दूसरी इतिहास संबंधी पुस्तक है। इसका रचना-काल 1888 का अंत या 1889 का आरंभिक दौर है। कुल मिलाकर इसे प्रथम कृति से भी अधिक ख्याति मिली। यहाँ तक कि सर सैयद अहमद ख़ान ने इससे प्रभावित होकर 'अलीगढ़ इंस्टीच्यूट गज़ट' में यह लिखा :

> "अगर वो नओज़ बिल्लाह अपने रिसाले 'अल जज़िया' की निस्बत मुसलमानों को मुख़ातिब करके यह कहें कि 'फ़ अतू बिसूरतिम मिम मिस्लीं'[1]

---

1. तो ले आओ कोई इस जैसी सूरत। (क़ुरान)
अनुवाद : मोहम्मद माज़म अहमद, नायब शाही इमाम, फ़तेहपुरी मस्जिद, दिल्ली। इस आयत में संसार को क़ुरान के समान कोई दूसरी रचना करने की चुनौती दी गयी है।—(अनुवादक)

तो कुछ ताज्जुब न होगा। जज़िया का ऐसा बेजा इल्ज़ाम इस्लाम पर था जिसका आज तक किसी ने ऐसी उम्दगी से हल नहीं किया था।"

मौलाना ने इस कृति में 'जज़िया' शब्द की व्युत्पत्ति और मूल रूप की चर्चा करते हुए यह साबित किया कि यह अरबी मूल का शब्द नहीं है, बल्कि शब्द 'गज़िया' का अरबी रूप है। फिर इसके इतिहास पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि यह वस्तुत: एक कर था जो नोशेरवाँ ने सेना के भरण-पोषण के लिए जनता पर लगाया था। इसके विपरीत ग़ैर मुस्लिम इस सेवा के लिए विवश नहीं किये जा सकते थे। अभिप्राय यह है कि जज़िया ग़ैर मुस्लिम जनता की सुरक्षा का साधन था। उनके ग़ैर मुस्लिम या काफ़िर होने का अर्थ-दंड नहीं था।

कुतुब ख़ाना-ए-अस्कंदरया

पाश्चात्य लेखकों की कृतियों ने जहाँ मौलाना शिबली को आधुनिक इतिहास लेखन की दृष्टि दी वहीं उनकी चिंतन-पद्धति और पूर्वग्रह-ग्रस्त कथनों से शिबली में यह एहसास भी पैदा हुआ कि यूरोपीय लेखक चाहे वे ईसाई हों या अरब, मुसलमानों के प्रति एक विद्वेष की भावना रखते हैं। इसलिए उन्होंने जहाँ मुसलमानों की ज्ञान तथा सभ्यता विषयक उपलब्धियों को अपने लेखन का विषय बनाया वहीं उन पर उठायी गयी आपत्तियों के निराकरण की ओर भी भरपूर ध्यान दिया। 'कुतुब ख़ाना-ए-अस्कंदरया' भी इसी प्रकार का एक शोधपूर्ण विस्तृत निबंध है जिसमें उन्होंने मुसलमानों पर इस पुस्तकालय के जलाये जाने के आरोप का खंडन किया। अनेक कारणों से इस कृति को मौलाना का महत्त्वपूर्ण अवदान माना जाता है। पहला कारण तो यह है कि इस विषय से संबंधित पाश्चात्य इतिहासकारों की जर्मन, फ्रेंच या अंग्रेज़ी में लिखी गयी विभिन्न पुस्तकें उनकी नज़र से गुज़र चुकी थीं। इन आपत्तियों के उत्तर में और अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह पूरी तरह प्रामाणिक है और जैसे-जैसे इसे आगे पढ़ते जाइये साफ़ महसूस होता है कि ईर्ष्यालु लोगों के दंभपूर्ण आक्षेपों के बादल छँटते जाते हैं और उनके तर्कों की बुनियाद बैठती जाती है। शिबली जो मूल रूप से अरबी और फ़ारसी के विद्वान थे, उनकी लेखनी से जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेज़ी पुस्तकों के संदर्भ बहुत ही सार्थक और प्रभावशाली प्रतीत होते हैं।

विवेच्य कृति के महत्त्व का दूसरा कारण यह है कि इसमें ऐतिहासिक घटनाओं की खोजबीन और गवेषणा के सिलसिले में चिंतन की गहराई प्राप्त होती है। इसके साथ ही विषय के प्रस्तुतीकरण में सहजता, विचारों के तारतम्य तथा भावपूर्ण गद्य ने इसके सौंदर्य में वृद्धि की है।

इन ऐतिहासिक तथा शोधपरक कृतियों के अतिरिक्त उन्होंने 'अल फ़ारुक़' और 'अलमामून' में संबंधित युगों की सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास को भी

अत्यंत प्रभावशाली रूप में लिपिबद्ध किया है। जिसकी मिसाल इन पुस्तकों से पहले उर्दू में कहीं और देखने को नहीं मिलती। कलाओं और ज्ञान के विविध अनुशासनों की समीक्षा की परंपरा का सूत्रपात शिबली ने ही किया। अतएव 'इल्म कलाम' कृति में उन्होंने इस ज्ञान के कालक्रमानुसार विकास के इतिहास की प्रस्तुति की है।

जीवनियाँ :

मौलाना शिबली ने इतिहास की तरह जीवनी लेखन के क्षेत्र में भी महनीय योगदान दिया है। वे 'हाली' के बाद उर्दू के दूसरे बड़े जीवनीकार माने जाते हैं। जीवनी वे लेखन की सामर्थ्य अपेक्षाकृत 'हाली' में अधिक है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि शोध-चेतना, संबंधित तथ्यों के ज्ञान की व्यापकता और तथ्यों के कलात्मक प्रस्तुतीकरण के सौंदर्य की दृष्टि से शिवली, हाली से कहीं बेहतर जीवनीकार हैं। इस प्रसंग में यह बात भी महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है कि उर्दू जीवनी लेखन के लिए शिबली द्वारा निर्मित ढाँचा आज भी आदर्श प्रतिमान बना हुआ है। अब हम मौलाना शिबली द्वारा लिखी गयी जीवनियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

अल मामून

यह मौलाना की पहली व्यवस्थित कृति है जो 1888 ई. में प्रकाश में आयी। कहने को यह प्रसिद्ध अब्बासी ख़लीफ़ा मामून रशीद का जीवन-वृत्त है लेकिन वास्तव में यह मात्र जीवन-वृत्त नहीं संबंधित युग का सांस्कृतिक इतिहास भी है। इस पुस्तक के उन्होंने दो खंड कर दिये हैं। प्रथम खंड में उन्होंने विस्तार के साथ यह बताया है कि इस्लाम में ख़िलाफ़त का सिलसिला किसलिए आरंभ हुआ और फिर यह सिलसिला बनू उमैया के ख़ानदान से होता बनू अब्बास के ख़ानदान तक कैसे पहुँचा? और फिर किन कारणों के परिणामस्वरूप हारुन रशीद के एक पुत्र अमीन की हत्या हो गयी और दूसरा मामून खलीफ़ा नियुक्त किया गया। दूसरे खंड में सल्तनत के प्रबंध, आय, सैन्य-व्यवस्था, न्यायपालिका तथा इससे जुड़े हुए विभागों से संबंधित सूचनाओं को क्रमवार प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा इस खंड में मामून रशीद के निजी जीवन, उसके व्यक्तित्व, उसकी अभिरुचियों इससे भी आगे उस दौर के सामान्य जन-जीवन के चित्र भी अंकित किये हैं।

उर्दू में यह अपने ढंग की पहली जीवनी थी, जिसमें आधुनिक मानदंड तथा अभिरुचि के अनुरूप इतिहास तथा जीवनी संबंधी तथ्यों की युगपद प्रस्तुति की गयी है। इसलिए देश में इसे आशातीत ख्याति मिली। मात्र तीन महीने की सीमित अवधि में इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। कई दृष्टि-संपन्न

लोगों ने एक बार में इसकी पचास प्रतियाँ तक ख़रीदीं। अतः इस पुस्तक के बाद मौलाना शिबली की गणना उर्दू के प्रथम पंक्ति के लेखकों में की जाने लगी।

सीरतुल नुअमान

मौलाना शिबली धर्मशास्त्र संबंधी सिद्धांतों में इमाम अबू हनीफ़ा के पंथ के अनुयायी थे। उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन से ही इमाम साहब के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा रही थी। अपना 'नुअमानी' उपनाम भी इसी श्रद्धा की अभिव्यक्ति थी। इसलिए 'अलमामून' से निवृत्त होकर उन्होंने संबंधित इमाम साहब के जीवन वृत्त पर यह पुस्तक तैयार की। 'अल मामून' की तरह इसके भी दो खंड हैं। पहले खंड में इमाम साहब के जीवन के विविध प्रसंग हैं। दूसरे खंड में हदीस और धर्मशास्त्र आदि के प्रति उनकी तन्मयता और निष्ठा के भाव पर प्रकाश विकीर्ण किया गया है। इन विधाओं के संबंध में उनके दृष्टिकोण की ओर भी संकेत कर दिया गया है। फिर इस्लाम के दूसरे सिद्धांतकारों और प्रचारकों की धर्म विषयक दृष्टि की तुलना में इमाम हनीफ़ा के धर्मशास्त्र के गुणों की विवेचना की गयी है। उस युग में इस्लामी धर्मशास्त्र के रोमन लॉ से प्रभावित होने की धारणा का भी खंडन कर दिया गया है। पुस्तक का अंतिम भाग इमाम साहब के लोकप्रिय अनुयायियों और शिष्यों के परिचय पर आधारित है।

'सीरतुल नुअमान' का प्रथम खंड 1889 ई. में और द्वितीय खंड 1890 ई. में लिखा गया था। अलबत्ता इसकी छपाई की नौबत 1891 के अंतिम दिनों में आयी। इसके प्रकाशन के बाद मौलाना 'हाली' ने 'अलीगढ़ इंस्टीच्यूट गजट' में एक विस्तृत टिप्पणी लिखी थी। जिसके कुछ अंश निम्नांकित हैं :

> "मौलाना की कई पुस्तकें इससे पहले छपकर आ चुकी हैं, जैसे 'मुसलमानों की गुजिश्ता तालीम', 'मामून रशीद की सवानह उम्री' और 'जज़िया'। उन्होंने अपनी हर कृति में अपने आपको जिस ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया है, उसके बाद की कृति में उनकी रचनाशीलता उच्च से उच्चतर होती गयी है और जहाँ तक मेरी निगाह पहुँची है मैं 'सीरतुल नुअमान' को इन सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ।
>
> " 'सीरतुल नुअमान' के लेखक को, शायद पहले हिस्से की तरतीब में जोकि इमाम साहब के जीवन-वृत्त पर आधारित है, उसके पास उपलब्ध एकाध पुस्तक से मदद मिली हो तो मिली हो। लेकिन दूसरा हिस्सा जिसमें कि इमाम साहब के धार्मिक तौर-तरीक़ों का वर्णन है, लेखक के निजी चिंतन की उपज है। दोनों हिस्सों में हुस्ने तरतीब का हक़ पूरा-पूरा अदा हुआ है।"

अल फ़ारुख़

यह हज़रत उमर फ़ारुख़ की अत्यंत प्रामाणिक और संपूर्ण जीवनी है। मौलाना शिबली की तमाम कृतियों में इसे 'बैतुल ग़ज़ल' (श्रेष्ठ और सुंदरतम रचना) का दरजा हासिल है। हज़रत उमर के जीवर पर अरबी, फ़ारसी और उर्दू तथा इसके अलावा भी कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं लेकिन 'अल फ़ारुख़' इन सब पर भारी है।

इस पुस्तक का आरंभ एक भूमिका से होता है जिसमें इस्लामी इतिहास के विभिन्न युग, उनकी विशेषताएँ और इतिहासकार के कर्तव्य आदि की चर्चा की गयी है। इसके साथ ही यूरोप के इतिहासकारों की संतुलनहीनता की ओर संकेत भी किया गया है।

भूमिका के बाद अपनी दूसरी जीवनियों की तरह मौलाना ने इस पुस्तक के दो खड किये हैं। पहले खंड में हज़रत उमर के वंश, शैशव, कैशोर्य, इस्लाम मे दीक्षा आदि से लेकर खिलाफ़ते इस्लामिया के लिए उनके चुनाव फिर उनके युग की उपलब्धियों का ज़िक्र किया गया है।

दूसरे खंड के आरंभ मे लेखक ने पहले फ़ारुक़ी युग के वैभव का वर्णन किया है, फिर सल्तनत के प्रबंध-तंत्र की चर्चा की है फिर शासन की स्थिति का विश्लेषण है जिसके अनुसार यह शासन प्रजातंत्र के बहुत समीप था। इसके अनंतर देश के हिस्से, देश के पदाधिकारियों, उनके वेतन, उनके कर्तव्य तथा रिश्वत पर प्रतिबंध के तरीको का रोचक वर्णन मिलता है। शासन-तत्र के बाद राजस्व विभाग का ब्योरा है। फिर फ़ारुक़ी युग की न्याय-व्यवस्था का रोचक चित्र मिलता है। इसके बाद क्रमवार पुलिस और फ़ौजदारी के विभागों का ज़िक्र है। फिर पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट और विधि विभाग से संबंधित विस्तृत सूचनाएँ दी गयी हैं।

सल्तनत के प्रबंध-तंत्र के बाद हज़रत उमर की इमामत और धार्मिक आंदोलन से संबंधित अत्यधिक गंभीर विचार-विमर्श किया गया है। फिर उनकी निजी स्थितियों, स्वभाव और प्रकृति, परहेज़गारी, शालीनता, शिष्टाचार और इबादतों का वर्णन किया गया है। सबसे अंत में संतान का ज़िक्र है और इसी पर पुस्तक समाप्त हो जाती है।

मौलाना शिबली की दूसरी जीवनियों की तरह 'अल फ़ारुख़' में भी इतिहास तथा जीवनी से संबंधित तत्त्व एक स्थान पर युगपद दिखाई देते हैं क्योंकि यहाँ भी उन्होंने जीवन तथा युगीन स्थितियों का एक साथ चित्रण किया है। 'अल फ़ारुख़' 1898 में पूरी हुई और 1899 में प्रकाशित होकर सामने आयी।

अल ग़ज़ाली

मौलाना शिबली ने यह पुस्तक हैदराबाद की नौकरी के ज़माने में 1901 ई. में लिखी थी। इस पुस्तक में इमाम ग़ज़ाली के जीवन और उनकी विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन जीवनी के तत्त्व इसमें बहुत कम हैं। मात्र तीन पृष्ठों में इमाम ग़ज़ाली के जीवन-वृत्त का ब्योरा दे दिया गया है। पुस्तक के शेष भाग में दार्शनिक तथा चिंतक के रूप में ग़ज़ाली के योगदान का विस्तृत विवेचन किया गया है।

सवानहे-मौलाना रूम

यह पुस्तक भी हैदराबाद प्रवास के दौरान लिखी गयी थी। इसमें भी जीवन-वृत्त को बहुत कम स्थान दिया गया है। अधिकांश भाग में मौलाना रूम के साहित्यिक योगदान पर ही चर्चा की गयी है। इस पुस्तक का रचना-काल 1904 तथा प्रकाशन वर्ष 1906 ई. है।

सीरत निगारी :

शब्द-कोश के अनुसार 'सीरत' और 'जीवनी' समानार्थक शब्द हैं। लेकिन अरबी, फ़ारसी और उर्दू में 'सीरत' शब्द का व्यवहार पैग़म्बर सल्लल्लाह अलेह वसल्लम की जीवनी के विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। हम भी इस शब्द को यहाँ इसी अर्थ में प्रयुक्त कर रहे है। मौलाना शिबली ने जहाँ 'अलमामून', 'अल फ़ारुख़' और 'अल ग़ज़ाली' आदि के रूप में आम इंसानों की जीवनियाँ लिखी हैं, वहीं उन्होंने सीरत के विषय पर भी 'सीरतुन्नबी' के नाम से एक अविस्मरणीय कृति प्रस्तुत की है। नीचे हम इसका संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

सीरतुन्नबी

यह मौलाना शिबली की अन्तिम रचना है। उनका इरादा था कि वे इसे कई खंडों में पूर्ण करेंगे। जीवन-वृत्त का भाग प्रायः लिख चुके थे कि उनका अन्त समय आ गया और वे इस दुनिया से चल बसे। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि अपूर्ण स्थिति में भी यह जीवनी एक सीमा तक पूर्ण ही प्रतीत होती है।

'सीरतुन्नबी' यूरोप के लेखकों द्वारा लिखित मोहम्मद साहब की जीवनी के प्रतिक्रियास्वरूप लिखी गयी थी। इस पुस्तक के लिखने की आवश्यकता मौलाना शिबली को इसलिए प्रतीत हुई कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब यूरोप के लेखकों की सीरत से सम्बन्धित पुस्तकें बहुत प्रचारित होने लगी थीं तो आनहज़रत सल्लल्लाहे अलेह वसल्लम की सीरत के विषय में मुसलमान नवयुवकों के मन में

तरह-तरह के संदेह और शंकाएँ जन्म लेने लगी थी। इसलिए एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता महसूस हुई जिसमें इन संदेहों व शंकाओं का ठीक-ठीक निवारण किया जा सके।

यों तो सर सैयद अहमद ख़ान की 'ख़ुत्बाते अहमदिया' और क़ाज़ी मोहम्मद सुलेमान मंसूरपुरी की 'रहमतुल आलमीन' की रचना का उद्देश्य भी वही है जो शिवली की 'सीरतुन्नबी' का है और काल-क्रम की दृष्टि से भी उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का नाम पहले आता है लेकिन जहाँ तक आधुनिक मस्तिष्क को सन्तुष्ट करने की बात है और उनके अस्वस्थ हृदय के उपचार का सम्बन्ध है, 'सीरतुन्नबी' का स्थान इन दोनों से ऊँचा है। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह कि मौलाना शिबली को आक्षेपकारों के विभिन्न आक्षेपों और इनके पीछे निहित प्रयोजन की व्यापक जानकारी थी। दूसरे, वे अपने पक्ष को तर्कों से इतना पुष्ट करके प्रस्तुत करते हैं कि पाठक को असहमति की गुंजाइश नहीं रह जाती। तीसरा और अन्तिम कारण यह है कि वे अपने समकालीन सीरत निगारों की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ भाषा-विद हैं इसलिए भाषा-शैली की परिपक्वता और प्रभाव क्षमता पाठक के दिलो-दिमाग़ पर छा जाती है।

इल्मे कलाम

इल्मे कलाम वह ज्ञान है जिसमें धार्मिक आस्थाओं को वैचारिक तर्कों के माध्यम से व्याख्यायित किया जाता है। या यों कहें कि धार्मिक आस्थाओं के विश्लेषण हेतु वैचारिकता का सहारा लिया जाता है। मौलाना शिबली ने इल्मे कलाम के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ कीं। वे उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की उपज हैं। इस युग में यूरोप की राजनीति तथा धार्मिक सर्वोपरिता के कारण मुसलमानों का एक वर्ग अपनी धार्मिक आस्थाओं को लेकर अनेक संदेहों में घिरा हुआ था। लौकिक सत्ता के परे अपने धार्मिक विश्वासों जैसे तौहीद[1], रिसालत[2], जन्नत, दोजख़ और क़यामत आदि का कोई तार्किक आधार नज़र नहीं आता था। इसलिए मौलाना शिवली ने इस ओर भी ध्यान दिया और इल्मे कलाम से संबंधित कई पुस्तकें लिखीं। जिनमें 'इल्मुलकलाम' और 'अलकलाम' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इल्मुल कलाम

इस पुस्तक का विषय ख़ुद इल्मे कलाम नहीं बल्कि इसका इतिहास है। इसमें

1. ख़ुदा को एकमात्र सत्ता मानना
2. पैग़म्बर

मौलाना ने इल्मे कलाम के आरम्भ, इसके विस्तार के कारण तथा इसके ऐतिहासिक विकास का जायज़ा लिया है। मीमांसकों के विभिन्न सम्प्रदायों जैसे 'मयतज़ला' 'इशायरा' और 'मातरीदिया' के विश्वासों और दृष्टिकोणों के परस्पर भेद को भी सविस्तार निरूपित किया है। इसके अलावा प्रसिद्ध मीमांसकों से सम्बन्धित घटनाओं और परिस्थितियों का भी क्रमशः उल्लेख कर किया गया है।

इस पुस्तक में सबसे पहले यह बताया गया है कि इस्लाम में आस्थाओं का अन्तर्विरोध क्यों कर प्रकट हुआ ? फिर पाँचवीं सदी हिजरी तक की अवधि में इल्मे कलाम के संग्रह एवं सम्पादन फिर इसके उत्कर्ष तथा अपकर्ष की कहानी का वर्णन कर दिया गया है। इसके अनन्तर 'इशायरा' के इल्मे कलाम पर बातचीत है। इस सम्प्रदाय के मीमांसक इमाम ग़ज़ाली और इमाम राज़ी की कृतियों और गतिविधियों का ज़िक्र है। अगले भाग में इब्न रुश्द, इब्न तीमिया और शाह वली उल्लाह देहलवी के इल्मे कलाम से सम्बन्धित कामों का जायज़ा लिया गया है। एक पृथक् अध्याय में मीमांसकों के अलावा इस्लाम के चिकित्सा शास्त्रियों जैसे फ़ारावी, इब्ने सीना, इब्ने मस्कूया और शेखुल इश्राक़ के विचारों पर भी चर्चा की गयी है। अन्त में इल्मे कलाम पर एक निष्कर्षात्मक टिप्पणी है। यहीं पुस्तक समाप्त हो जाती है।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में यह कहना ग़लत न होगा कि इल्मे कलाम के इतिहास से सम्बन्धित जो जानकारी और सूचनाएँ इसमें हैं, उर्दू में ये अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इस पुस्तक को अनुकरणीय कहा जा सकता है। साथ ही इस पुस्तक की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि चर्चा गूढ़ और दार्शनिक होने के बावजूद इसकी भाषा अत्यधिक सरस, प्रांजल और प्रवाहपूर्ण है। बानगी के तौर पर इसका एक अंश नीचे उद्धृत है। पाँचवीं सदी हिजरी में तुर्कों की विजय के बाद इल्मे कलाम और इल्मे अक़्लिया के ह्रास का वर्णन करते हुए लिखते हैं :

> ''तुर्क अपने ज़ोरो-क़ुव्वत की वजह से सारे आलम पर छा गये लेकिन जिस क़दर उनके दस्तो बाज़ू क़वी (शक्तिशाली) थे, उसी क़दर दिलो-दिमाग़ ज़ईफ़ (वृद्ध) था। मज़हबी उलूम से वो बिल्कुल आरी (उदासीन) थे। इसलिए हुकूमत में मज़हब का जो हिस्सा मिला हुआ था उससे उनको दस्तबरदार (वंचित) होना पड़ा। वो न इमामत कर सकते थे, न ख़ुत्बा दे सकते थे, न किसी मसले पर राय क़ायम कर सकते थे। इस बिना पर मज़हबी हुकूमत फ़िक़हा (धर्मवेत्ताओं) के हाथ आ गयी। या यह हालत थी कि ख़ल्क़े क़ुरान के मसले पर मामून-उल-रशीद ने तमाम उल्मा को मनाज़िरे (बहस) की दावत दी और शर्त की कि कोई शख़्स मुझको माक़ूल (पराजित) कर दे तो मैं अपने अक़ीदे से बाज़ आ जाऊँ। या यह हालत हुई कि महमूद ग़ज़नवी ने जब तहक़ीक़े हक़ (सत्य की खोज) के लिए हनफ़िया और

शाफ़िया में मुनाज़िरा कराया तो इस काम के लिए एक अरबी दां ईसाई को तलब करना पड़ा। ग़र्ज़ तुर्कों का ज़ोर पकड़ना था कि इल्मे कलाम में ज़अफ़ (ह्रास) आ गया। ख़्यालात की आज़ादी दफ़अतन (यकायक) रुक गयी और अक़्ली रोशनी बिल्कुल माँद पड़ गयी।"

'इल्मुल्कलाम' का रचना काल 1902 ई० है।

अलकलाम

यह पुस्तक एक दृष्टि से पूर्व चर्चित पुस्तक 'इल्मुल्कलाम' का दूसरा भाग है। पहले भाग में मौलाना शिबली ने इल्मे कलाम का इतिहास बताया था, इस भाग में उन्होंने एक नये इल्मे कलाम की नींव डालने का प्रयास किया है। उनका विचार था कि आधुनिक युग में प्राचीन इल्मे कलाम प्रासंगिक नहीं हो सकता बल्कि नयी परिस्थितियों और समस्याओं के संदर्भ में एक नये इल्मे कलाम की आवश्यकता है। अतएव 'अलकलाम' के आरम्भ में लिखते हैं—

"प्राचीन इल्मे कलाम में केवल इस्लाम के विश्वासों की चर्चा होती थी क्योंकि उस युग में विरोधियों ने इस्लाम पर जो आक्षेप लगाये थे, विश्वासों से सम्बन्धित ही थे। लेकिन आजकल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक हर रूप में धर्म को जाँचा जाता है। यूरोप की दृष्टि में किसी धर्म के विश्वास इतने आपत्तिजनक नहीं जितने कि इसके क़ानूनी और शिष्टाचार सम्बन्धी मसले हैं। उनकी दृष्टि में एकाधिक निकाह तलाक़, ग़ुलामी, जिहाद का किसी धर्म में उचित ठहराना, उस धर्म के खोटे होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। इस कारण इल्मे कलाम में इस क़िस्म की समस्याओं पर बहस होगी और यह हिस्सा बिल्कुल इल्मे कलाम होगा।"

मौलाना शिबली ने 'अलकलाम' को तीन भागों में विभक्त किया है— आस्था, उपासना और शिष्टाचार। इन तीनों भागों में आस्थाओं पर केन्द्रित भाग अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। इसमें तौहीद, रिसालत, वही[1], क़यामत और दोज़ख़ और जन्नत आदि से सम्बन्धित आस्थाओं को नये चिंतन और तर्कों के प्रकाश में प्रस्तुत किया गया है। आस्थाओं की अपेक्षा में उपासनाओं तथा शिष्टाचार से सम्बन्धित अंश बहुत संक्षेप में हैं। यह पुस्तक इस लिहाज़ से अधूरी जान पड़ती है कि मौलाना शिबली ने अपने दावे के विपरीत एकाधिक निकाह, तलाक़, ग़ुलामी और जिहाद जैसी समस्याओं पर पूरी पुस्तक में कहीं कुछ नहीं लिखा है। 'अलकलाम' का प्रकाशन वर्ष 1904 ई० है।

---

1. पैग़म्बर को ईश्वर की ओर से मिला आदेश।

साहित्य एवं आलोचना

विषय की दृष्टि से मौलाना शिवली की अधिकतर कृतियाँ ऐतिहासिक, जीवनी-परक तथा शिक्षा-सम्बन्धी हैं। लेकिन ऐसा नहीं कि वे साहित्य की समस्याओं के प्रति उदासीन रहे हों। विभिन्न लेखों और निबंधों के अतिरिक्त उनकी दो कृतियाँ विशुद्ध रूप से साहित्यिक हैं—एक 'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' (अनीस और दबीर का तुलनात्मक अध्ययन) तथा दूसरी 'शैरुल अजम'। आगे के पृष्ठों में इन दोनों पर अपेक्षित विस्तार के साथ चर्चा की जाती है।

मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर

उर्दू के शिक्षित वर्गों में मौलाना शिवली की अन्य पुस्तकों की तुलना में यह पुस्तक अधिक प्रसिद्ध और चर्चित रही है। इसकी वजह यह है कि इस पुस्तक के अलावा शिबली ने शे'रो शायरी पर अन्यत्र कहीं अपने विचारों का उद्गार नहीं किया है। इस पुस्तक की रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है:

> "मुद्दत से इरादा था कि किसी विशिष्ट शायर के कलाम पर समीक्षा लिखी जाय, जिससे अंदाजा हो सके कि उर्दू शायरी भाषा की विपन्नता के बावजूद किस कोटि की है? इस उद्देश्य से मेरे चुनाव के लिए 'अनीस' से ज्यादा उपयुक्त शायर और कोई नहीं हो सकता था। क्योंकि उनके साहित्य में शायरी के जितने रूप पाये जाते हैं, वे अन्य किसी शायर में दुर्लभ हैं।"

'मवाजना-ए-अनीस-ओ-दबीरो' एक भूमिका से शुरू होती है जिसमें पहले शायरी तथा शे'र के प्रतिमानों का संक्षिप्त विवरण है। फिर मर्सिया विधा का परिचय दिया गया है। इसके अनन्तर मर्सिया गोई के इतिहास पर दृष्टिपात किया गया है।

भूमिका के पश्चात् मीर अनीस की शायरी की निजी विशिष्टताओं का विवेचन प्रारम्भ होता है। इस भाग में वर्णन-सौंदर्य, रोज़मर्रा मुहाविरे, उपमाएँ, प्रतीक तथा विभिन्न अलंकारों की परिभाषा करते हुए, उन्हें मीर अनीस की शायरी पर घटित किया है। इसके बाद कथोपकथन, घटना-निरूपण, दृश्य वर्णन, चरित्र-चित्रण आदि शीर्षकों के अन्तर्गत मीर अनीस के मर्सियों से बेहतरीन

उदाहरण दिये गये हैं। फिर सलाम, रुबाय्यात, एतराज़ात और सरक़ात से सम्बन्धित पृथक् अध्याय हैं। अन्त में 'अनीस' और 'दबीर' की तुलना की गयी है। यहीं पुस्तक समाप्त हो जाती है।

उर्दू आलोचना के इतिहास में 'हाली' के 'मुक़दमा-ए-शे'रो-शायरी' की तरह 'मवाज़ना-ए-अनीसी दबीर' का महत्त्व भी असंदिग्ध है। एक तो इसलिए कि यह तुलनात्मक समीक्षा की पहली पुस्तक है। दूसरे इसलिए कि इस पुस्तक के माध्यम से उर्दू में पहली बार किसी एक शायर को केन्द्र में रखकर उसके साहित्य पर विस्तृत चर्चा की गयी है।

मीर अनीस की गणना उर्दू के प्रथम पंक्ति के शायरों में की जाती है। इस कारण उनकी शायरी पर शोध और समीक्षा का क्रम आज भी जारी है। लेकिन यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मौलाना शिबली ने 'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' के माध्यम से 'अनीस' की शायरी को लेकर जो स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं इसके बाद कोई परिवर्तन और नवीन विचार सामने नहीं आ सका है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 'अनीस' के मूल्यांकन के तमाम प्रयत्न मौलाना शिबली की स्थापनाओं के इर्द-गिर्द ही घूमते नज़र आते हैं। मुंशी नौबत राय 'नज़र' ने 'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' के प्रकाशन के बाद 1908 ई० में इस पर समीक्षा लिखते हुए कहा था—

> "अनीस का साहित्यिक विवेक पिछली आधी शताब्दी से आज तक हर व्यक्ति को अनुकरणीय था लेकिन मौलवी शिबली साहब ने जिस विस्तार के साथ इसकी व्याख्या की है, इसका अधिकार उन्हीं को है।"

'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' एक ओर जहाँ हर ओर से प्रशंसित हुई वहीं दूसरी ओर इस पर आलोचनाएँ भी ख़ूब आयी हैं। इसके आलोचकों में एक ओर तो वे लोग थे जो 'अनीस' की अपेक्षा मिर्ज़ा 'दबीर' की शायरी की गुणवत्ता के क़ायल थे। अतएव इस वर्ग की ओर से 'मवाज़ना' के खंडन में अनेक पुस्तकें और लेख आदि लिखे गये। उदाहरण के लिए 'अलमीज़ान', 'रद्दुल मवाज़ना' और 'तनक़ीदे मवाज़ना' आदि। दूसरी ओर वे सज्जन थे जो 'दबीर' के प्रशंसक न थे और उन्हें इस पुस्तक में अनेक कमियाँ नज़र आती थीं। जैसे कि इसमें तुलना का दायित्व निभाने के बजाए पक्षपात से काम लिया गया है। मर्सिया गोई का इतिहास निहायत सरसरी तौर पर प्रस्तुत किया गया है। गम्भीर चर्चा के बजाय उद्धरणों की भरमार से पुस्तक का आकार बढ़ाने की कोशिश की गयी है, आदि। ये आपत्तियाँ एक सीमा तक उचित हैं फिर भी उर्दू आलोचना के विकास में 'मवाज़ना' की स्थिति मील के पत्थर की तरह है। इस पुस्तक का रचना-काल 1904 तथा प्रकाशन वर्ष 1906 ई० है।

शे'रुल अजम

यह मौलाना शिबली की अत्यंत उच्चकोटि की साहित्यिक कृति है। इसके चार खंड मौलाना के जीवन-काल में तथा पाँचवाँ उनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का साहित्य जगत् में जिस रूप में स्वागत हुआ उसका ज़िक्र करते हुए प्रोफ़ेसर नज़ीर अहमद लिखते हैं—

> "इस पुस्तक को जिस क़दर प्रसिद्धि मिली और मौलाना शिबली को ज़्यादा ख्याति प्राप्त हुई इसका अनुमान मौलाना को भी न रहा होगा। इससे पहले दो-तीन खंडों की रचना को लगभग सत्तर वर्ष हुए। इस दौरान फ़ारसी में भी प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ। जो मौलाना की पहुँच में न था। लेकिन इसके बावजूद अब तक कोई पुस्तक इन विषयों पर, जिनको 'शे'रुल अजम' में समेटा गया है, सामने नहीं आ सकी है। मौलाना शिबली की यह कृति अब भी प्रथम-चिह्न की महत्ता रखती है। और बावजूद अपनी सीमाओं के यह कृति सत्तर साल से फ़ारसी साहित्य के इतिहास की अद्वितीय मिसाल है।"

'शे'रुल अजम' का विषय फ़ारसी साहित्य का इतिहास है। मौलाना शिबली ने प्राचीन, मध्यकालीन तथा परवर्तियों के नाम से फ़ारसी शायरों के तीन युग निश्चित किये हैं। हर युग के लिए एक खंड समर्पित है। अतएव पहले खंड में शे'र की वास्तविकता पर टिप्पणी करते हुए सामानिया ख़ानदान के समकालीन शायर 'रौद' और 'दक़ीक़ी', फिर ग़ज़नवी युग के शायर 'उंसरी', 'फ़र्ख़ी', 'फ़िरदोसी' असदी तूती और मनूचेहरी के जीवन-वृत्त का वर्णन है। इसके साथ ही, इनके साहित्य का समीक्षात्मक विवेचन है। इसके अनंतर 'सनाई', उमर ख़य्याम, अनवरी और निज़ामी गंजवी का विस्तृत परिचय है।

दूसरे खंड के आरम्भ में पहले मध्य युग के शायरों की विशेषताओं का विवेचन है। फिर फ़रीदुद्दीन 'अत्तार', कमाल अस्मा 'ऐल', शेख़ 'सादी', अमीर ख़ुसरो, सलमान सावजी, हाफ़िज़ शीरानी और इब्न यमीन का जीवन-परिचय दिया गया है। उनकी काव्यगत विशेषताओं का वर्णन भी है।

तीसरे खंड के आरम्भ में पहले परवर्ती शायरों की विशेषताओं का निदर्शन किया गया है। इसके बाद 'फ़ुगानी शीराज़ी', 'फ़ैज़ी', 'अर्फ़ी', 'नज़ीरी', तालिब 'आमली', मिर्ज़ा साहब अस्फ़हानी और अबू तालिब कलीम की युगीन परिस्थितियों का वर्णन है।

मौलाना शिबली की धारणा थी कि 'कलीम' के बाद फ़ारसी शायरी, शायरी न रही बल्कि पहेली बन गयी। इसलिए इसके बाद के शायरों को शे'रुल अजम के क्रम में स्थान नहीं दिया है।

मौलाना की इच्छा थी कि शायरों के युग और उनके साहित्य पर समीक्षा के

बाद चौथे खंड में शे'र की वास्तविकता, फ़ारसी शायरी और उसके काव्य-रूपों पर विस्तार से विचार किया जायेगा लेकिन जब शायरी के शब्द और अर्थ की विशेषताओं में ही सत्तर-अस्सी पृष्ठ भर गये तो उन्हें विवश होकर पाँचवें खंड की योजना भी बनानी पड़ी। वर्तमान दशा में चौथे खंड का पहला अध्याय शे'र की वास्तविकता से संबंधित है। दूसरे अध्याय के कतिपय महत्त्वपूर्ण शीर्षक निम्नलिखित हैं :

> ईरान में शायरी का जन्म क्यों हुआ, शायरी की तदरीजी रफ़्तार, फ़ारसी शायरी पर अरबी शायरी का असर, शख़्सी और ख़ुद मुख़्ताराना हुकूमत का असर, शायरी पर निज़ामे हुकूमत का असर, फ़ौजी ज़िंदगी का असर, इख़्तिलाफ़ माशरत का असर, आबो हवा और मनाज़िरे क़ुदरत का असर।

तीसरे अध्याय का विषय फ़ारसी शायरी की गहन आलोचना है। इस अध्याय के आरम्भिक चौदह पृष्ठों में अरबी शायरी से तुलना करते हुए फ़ारसी शायरी के गुण-दोषों का विवेचन है। इसके बाद 'शाहनामा' फ़िरदौसी की पृष्ठभूमि में मसनवी काव्य-रूप पर विस्तृत चर्चा है। इसी पर चौथा खंड समाप्त हो जाता है।

पाँचवें खंड में पहले फ़ारसी ग़ज़ल और क़सीदे पर बातचीत है। फिर फ़ारसी की श्रृंगारिक, सूफ़ियाना, नैतिक और दार्शनिक शायरी पर विस्तार से चर्चा है।

'शे'रुल अजम' के प्रकाशन के बाद मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी, मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' और मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी आदि ने जहाँ इस पर प्रशंसात्मक समीक्षाएँ लिखीं वहीं मौलाना असलम जयराजपुरी ने अपने आलोचनात्मक लेख में इसकी बहुत-सी ख़ामियाँ भी गिनायीं। इसके अलावा महमूद शीरानी ने पाँच सौ से अधिक पृष्ठ का एक शोध-ग्रंथ 'तनक़ीदे शे'रुल अजज' के नाम से लिखा। इस पुस्तक के आरम्भ में उन्होंने अपनी आपत्तियों को इस रूप में सूत्रबद्ध किया है :

> "शे'रुल अजम के अध्ययन के बाद मेरी निजी राय यह क़ायम हुई कि अल्लामा शिबली इस कृति के दौरान इतिहासकार और गवेषक के दायित्वों से एक सीमा तक उदासीन रहे हैं। सरस या नीरस उनके अध्ययन में जो कुछ आ जाता है, वे उसी को संदर्भित कर देते हैं···संभव है कि वे इस्लाम के इतिहास में अच्छी गति रखते हों, लेकिन फ़ारसी शायरों के युग के बारे में उनकी ऐतिहासिक जानकारी बहुत सीमित है···बहुत से ग़ैर ऐतिहासिक प्रसंगों ने 'शे'रुल अजम' में महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। बहुत-सी वे ग़लतियाँ जो वृत्तांत लेखकों ने बार-बार दोहराई हैं और हमारी ज़बान पर चढ़ गयी हैं, वे ग़लतियाँ शिबली की इस पुस्तक में भी बदस्तूर मौजूद हैं। जो-जो सूचनाएँ उन्हें सुविधा से प्राप्त हो गयी हैं, उन्हीं पर संतोष कर लिया है, शोध और जाँच-पड़ताल से काम नहीं लिया है।"

शीरानी साहब की उपर्युक्त आपत्तियाँ बहुत सीमा तक उचित हैं लेकिन इससे 'शे'रुल अजम' के मूल्य एवं महत्त्व में कोई विशेष कमी नहीं आती है, क्योंकि बक़ौल मौलाना सैयद सुलेमान नदवी :

"'शे'रुल अजम' शायरों की नामावली, जीवन-वृत्तांत और अमीर और सुलतानों का आलोचनात्मक इतिहास नहीं है बल्कि फ़ारसी शायरी का आलोचनात्मक अध्ययन है। शे'रुल अजम में हर शायर का जीवन-परिचय पहली चीज नहीं, दूसरी चीज़ है। इसकी पहली चीज़ है हर शायर की सर्जनात्मक प्रतिभा और कला-कौशल। अतः वह जड़ पदार्थों का इतिहास नहीं, बल्कि आत्मा और मस्तिष्क का इतिहास है।"

आलोचना

'हाली' की तरह शिबली भी उर्दू भाषा के पहले युग के और प्रथम पंक्ति के आलोचकों में शुमार किये जाते हैं। जिस तरह 'हाली' के यहाँ 'मुक़दमा-ए-शेरो शायरी' तथा 'यादगारे ग़ालिब' के रूप में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना की मिसालें मिलती हैं, उसी तरह शिबली ने भी 'शे'रुल अजम' और 'मवाज़ना-ए-अनीस-ओ-दबीर' के ज़रिए आलोचना के दोनों रूपों के नमूने पेश किये हैं और जिस तरह 'हाली' की आलोचना शे'रो शायरी के काव्य रूपों तक सीमित है, उसी तरह शिबली भी शायरी के आलोचक हैं।

शिबली ने शे'र की सार्थकता और मूल्य-वत्ता के बारे में जो कुछ कहा है उसका सार-रूप यह है कि मानवीय भावनाओं या प्राकृतिक दृश्यों के प्रभावपूर्ण चित्रांकन को शायरी कहते हैं।

शायरी की रचना-प्रक्रिया के बारे में उनका दृष्टिकोण यह है कि जिस तरह जीवधारी किसी आंतरिक भावना के कारण स्वाभाविक अभिव्यक्ति करते हैं उसी तरह दुनियावी शायर भी आंतरिक आग्रहों के परिणामस्वरूप अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। वह शायरी जिसका उत्प्रेरक कोई आंतरिक भाव न हो, वह वायवीय, औपचारिक और प्रभावहीन होती है।

शिबली के अनुसार हर महान और समर्थ शायर में सबसे ज़रूरी चीज़ है—बोध-शक्ति और भाव-सामर्थ्य। इसकी व्याख्या उन्होंने इन शब्दों में की है—शायरी यद्यपि यथार्थ के बोध और चित्रांकन का नाम है लेकिन बोध की आत्मा भाव है क्योंकि अगर मात्र किसी स्थिति का चित्र खींचकर रख दिया जाये तो इसमें कोई आकर्षण नहीं महसूस होगा। अलबत्ता शायर जब भाव-सामर्थ्य की सहायता से इसमें परिवर्तन और वृद्धि करता है, तो एक विशेष प्रकार के सौंदर्य की सृष्टि होती है।

शिबली ने शायरी के भावपूर्ण होने के लिए उक्ति के ढंग के प्रभावशाली होने

की शर्त भी रखी है और इस क्रम में उपमाओं, प्रतीकों तथा अन्य नये-से-नये भाषा-रूपों के प्रयोग को लाभदायक और सार्थक बताया है।

शिबली की दृष्टि में शायरी का चरम लक्ष्य सामाजिक और राजनीतिक नहीं है बल्कि विशुद्ध साहित्यिक है। इसलिए वे कहते हैं कि जब शे'र में किसी भावना की प्रभावशाली तथा हृदयग्राही अभिव्यक्ति की गयी हो, तो वह श्लाघनीय है। इसकी चिन्ता नहीं कि वह समाज और जनता के लिए उपयोगी है या अनुपयोगी ?

शिवली विषय और कथ्य की तुलना में भाषा और कला को अधिक महत्त्व देते है। अतएव अंतर्वस्तु के बजाए रूप उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव लिखते हैं :

"वास्तविकता यह है कि शायरी की गुणवत्ता शब्दों पर ही निर्भर करती है। 'गुलिस्तां' में जो विषय और विचार हैं, वे अछूते और दुर्लभ नहीं, लेकिन शब्दों के संतुलित और सानुपातिक प्रयोग ने उनमें जादू पैदा कर दिया है। उन्हीं विषयों और विचारों को साधारण शब्दों में व्यक्त कर दिया जाये तो सारा प्रभाव जाता रहेगा।"

इस मान्यता के परिप्रेक्ष्य में शिबली अपनी व्यावहारिक आलोचना में अंत-र्वस्तु के बजाए रूप को शायरी की कसौटी बनाते हैं। अत: उनकी दृष्टि में पसंदीदा शायरी वही है जिसकी तरकीबें चुस्त, बंदिशें दुरुस्त और भाषा प्रवाहपूर्ण हो। रहे वे शे'र जिनमें सायासता, दुर्बोधता और गूढ़ता है तथा कविता नहीं है, उनकी कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं।

गद्य-लेखन

मौलाना शिबली उर्दू भाषा के समर्थ और शैली सम्पन्न गद्य लेखक हैं। साहित्य-सेवा की दृष्टि से उनके गद्य का विशेष महत्त्व रहा है। मौलाना शिबली के सम-कालीन साहित्यकारों और गद्यकारों में सर सैयद, मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद', नज़ीर अहमद और 'हाली' के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रत्येक ने गद्य के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मौलाना की शैली इन सबसे भिन्न है। सर सैयद के यहाँ बहुधा भारी और नीरस शब्द आ जाते हैं। मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद उपमाओं' और प्रतीकों के बिना क़दम आगे नहीं बढ़ाते। नज़ीर अहमद मुहावरों के प्रयोग पर सब क़ुर्बान कर देते हैं। 'हाली' का गद्य कभी-कभी शुष्क और नीरस प्रतीत होने लगता है।

इन सबके विरुद्ध मौलाना शिबली के गद्य में एक ओर संतुलन तथा दूसरी ओर एक विशेष प्रकार का सौंदर्य-भाव पाया जाता है। इसका एक विशिष्ट कारण तो यह है कि वे शब्दों के पारखी हैं। हर शब्द को उचित अवसर और प्रसंग में प्रयुक्त करते हैं। लौकिक तथा आध्यात्मिक अपेक्षाओं का भी ध्यान रखते हैं।

अलबत्ता वाग्जाल के गोरख-धंधों में उलझना पसंद नहीं करते। दूसरा कारण यह है कि उनकी शैली में चिंतन की वह गंभीरता है जिसकी मिसाल और कहीं नहीं मिलती। मिसाल के तौर पर मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' को लीजिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि गद्यकार के रूप में 'आज़ाद' का स्थान शिबली से ऊँचा है लेकिन सब जानते हैं कि 'आज़ाद' की शैली में 'अल मामून', 'अल फ़ारूख़' या 'इल्मे कलाम' व 'इल्मुल कलाम' नहीं लिखे जा सकते। इसीलिए 'आबे हयात', नैरंगे ख़्याल' और 'दरबारे अकबरी' के गद्य से मौलाना शिबली की तुलना नहीं की जा सकती। अभिप्राय यह है कि चिंतन का गांभीर्य और कलात्मक सौंदर्य जिस तरह शिबली की कृतियों में जगह-जगह प्रकट होता है, वह अपनी मिसाल आप ही है। इस प्रसंग में 'अल फ़ारुख़' का यह अंश देखिये :

"क़ानूने फ़ितरत[1] के नुक्ता शनास[2] जानते हैं कि फ़ज़ायले इंसानी[3] की मुख़्तलिफ अन्वा[4] हैं और हर फ़ज़ीलत का जुदा रास्ता है। मुमकिन बल्कि कसीरुल वक़ू[5] है कि एक शख़्स एक फ़ज़ीलत के लिहाज़ से तमाम दुनिया में अपना जवाब नहीं रखता था, लेकिन और फ़ज़ायल से इसे बहुत कम हिस्सा मिला। सिकंदर सबसे बड़ा फ़ातह[6] था, लेकिन हकीम न था, अरस्तू हकीम था लेकिन किशवरसितां[7] न था। बड़े-बड़े कमालात एक तरफ़, छोटी-छोटी फ़ज़ीलतें भी एक शख़्स में मुश्किल से जमा होती हैं। बहुत-से नामवर गुज़रे हैं जो बहादुर थे, लेकिन पाकीज़ा अख़लाक़[8] न थे। बहुत-से पाकीज़ा अख़लाक़ थे, लेकिन साहबे तदबीर[9] न थे। बहुत-से दोनों के जामा[10] थे, लेकिन इल्मो-फ़ज़्ल से बेबहरे[11] थे।"

"अब हज़रत उमर और उनकी मुख़्तलिफ़ हैसियतों पर नज़र डालो, साफ़ नज़र आयेगा कि वो सिकंदर भी थे और अरस्तू भी। मसीह भी थे और सुलेमान भी। तैमूर भी थे और नौशेरवां भी। और इमाम अबू हनीफ़ा भी थे और इब्राहीम अदहम भी।"

मौलाना शिबली की कृतियों का एक गुण यह भी है कि उनमें किसी प्रकार की शिथिलता नहीं पायी जाती। हर वाक्य और हर पद साँचे में ढला हुआ प्रतीत होता है। यह इसलिए कि वे कुछ कहने से पहले अपने मन में विचारों का क्रम बना लेते हैं तब उनके लिए एक उचित माध्यम तलाश करते हैं। मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी के शब्दों में :

"शिबली की रचना-कला अद्वितीय थी। युद्ध हो या महफ़िल दोनों के दृश्य

---

1. प्रकृति का विधान 2. अभिज्ञ 3. मानवीय कौशल 4. प्रकार
5. ऐसी घटना जो प्राय: घटित होती रहती है 6. विजेता 7. दिग्विजयी
8. सदाचारी 9. पुरुषार्थी 10. समूह 11. विहीन, अनभिज्ञ

को समान प्रभाव के साथ उभारने में दक्ष थे। उचित शब्द, पद तथा तरकीबें लाने में माहिर थे। कोई तर्क रखेंगे तो ऐसा कि पहले क्षण में आप उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। विषाद का चित्र खीचेंगे तो ऐसा कि आप भी स्वयं को व्यग्र अनुभव करने लगें। हर्ष का वातावरण उभारेंगे तो ऐसा कि आपका हृदय कमल उसी क्षण खिल जाये। किसी शे'र की गिरह खोलेंगे तो ऐसी कि आप आह्लादित हो जायें। युद्ध या आक्रमण की घटना का चित्र खीचेंगे तो ऐसा कि आपकी शिराओं में उत्तेजना जाग्रत हो जाय···पाठक जैसे मोम के गुड्डे हैं कि लिखनेवाले ने जब और जिधर चाहा उनकी नाक मोड़ी और उन्हें पता भी न चलने पाया।"

वार्तालाप और संभाषण मौलाना शिबली के स्वभाव का अंग है। इसलिए जब वे किसी घटना, भावना या परिस्थिति का चित्रांकन करते हैं तो वार्तालाप की शैली के कारण उनके गद्य में सहजता और प्रभविष्णुता आ जाती है। वस्तुत: उनकी धारणा थी कि गद्य हो या कविता सौन्दर्य का प्रतिमान यह है कि लेखक द्वारा अभिव्यक्त भावों की अनुभूति पाठक कर सके। पाठकों को संबोधित होने के कारण ही उनकी रचनाओं में संवेदना-क्षमता अधिक है। 'अलमामून', 'अल फ़ारुख़' और 'सीरतुन्नबी' के अलावा उनके पत्रों में भी इसकी मिसालें बहुतायत के साथ मौजूद हैं। कुछ अंश देखे जा सकते है।

मामून का अन्तिम समय है। वह चेतना-शून्य अवस्था में है। उपस्थित लोगों में कोई कल्मा-ए-तौहीद पढ़ रहा है। इस पर एक ईसाई हकीम इब्न मासूया कहता है—'रहने दो, इस समय मामून के लिए मानी[1] और ख़ुदा एक समान हैं।' इस समय का दृश्य-चित्रण करते हुए लिखते हैं :

"मामून इस आवाज़ से अचानक चौंक पड़ा। और इस क़दर आतंकित हुआ कि उसके संपूर्ण अंग-प्रत्यंग थर्राने लगे। चेहरा और आँखें बिल्कुल सुर्ख़ हो गयीं। हाथ बढ़ा कर चाहा कि इब्न मासूया को पकड़ ले और इस द्वेष की पूरी सज़ा दे, लेकिन शरीर क़ाबू में न था। मुँह से कुछ कहना चाहा। ज़ुबान ने साथ न दिया। बड़ी अभिलाषा के साथ आकाश की ओर देखा, आँखों में आँसू भर आये। इसी दशा में ख़ुदा ने उसकी जुबान खोल दी। वह ख़ुदा की तरफ़ मुखातिब होकर बोला—"ऐ वह! जिसकी सल्तनत कभी नष्ट नहीं होगी, उस पर रहम कर जिसकी सल्तनत नष्ट हो रही है। इसी क्षण उसकी अंतिम श्वास ने दुनिया को अलविदा कहा और ख़ुदा की रहमत के साये में चली गयी।" (अलमामून)

1. एक प्रसिद्ध चित्रकार था। इसका जन्म 831 ई० में बाबिल (ईरान) में हुआ था। इसने नबी होने का दावा किया था। इस पर उसे लोगों का विरोध सहना पड़ा था।

एक शायर की दुनिया साधारण मनुष्यों से किसी तरह अलग होती है। उसकी व्यस्तताओं, आकांक्षाओं और जटिलताओं की क्या स्थिति है? इसका उत्तर शिवली के शब्दों में सुनिये :

"इस संसार में शायर के जीवन का इतिहास विचित्र रोचक प्रसंगों से भरा हुआ होता है। बुलबुल ने इसी संसार में उससे राग सीखे है। परवाने उसके साथ के खेले हैं। शमा से रात-रात भर वह अपनी व्यथा-कथा कहता रहा है। भोर की हवा को अक्सर उसने पत्र-वाहक बनाकर अपने प्रिय के पास भेजा है। बारहा उसने गुंचे की ऐन उस वक़्त चुग़ली की जबकि वह अपने प्रिय की मुस्कान चुरा रहा था।···संसार के घटना-चक्र पर जब वह अपनी उदार दृष्टि डालता है तो एक-एक कण उपदेशक कीतरह उसे शालीनता और सौहार्द की शिक्षा देता प्रतीत होता है। इस दशा में जब वह ग़रीबों के क़ब्रिस्तना निकल जाता है तो जर्जर हड्डियाँ उससे बातचीत करती हैं···प्रसन्नता की स्थिति में जब वह फूल हाथ में उठा लेता है तो उसको प्रिय की सुगंध की अनुभूति होती है और फूल को संबोधित करके कहता है—

—'ऐ गुल ! बतू खुरसंदम तू बू ए कसे दारी'

हज़रत मोहम्मद साहब की किशोरावस्था का चित्र खींचते हुए वे लिखते है :

"संसार रूपी उपवन में प्राणों को भर देनेवाला वसन्त आ चुका है। प्रकृति ने सृष्टि को विभिन्न सम्पदाओं से आपूरित कर दिया कि देखते ही नेत्र स्तब्ध होकर रह जाते हैं। लेकिन आज तक का इतिहास वह इतिहास है, जिसकी प्रतीक्षा में सृष्टि ने अनेक कल्प बिता दिए हैं। आकाश के नक्षत्र आरम्भ से इस दिन के लिए मार्ग में पलकें बिछाये बैठे थे। आकाश युगों से इसी भोर के लिए रात की करवटें बदल रहा था। काल की लीलाएँ, भौतिक तत्त्वों की नवीनताएँ, सूर्य और चंद्रमा की किरणें, मेघ और वायु की शीतलता, सृष्टि की पवित्र साँसें, इब्राहीम की एक ईश्वर में आस्था, यूसुफ़ की सुन्दरता, मूसा का यश, मसीह की करुणा—सब इसीलिए थे कि ये मूल्यवान चीज़ें कोनेन के शहंशाह के दरबार में काम आयेंगी।" **(सीरतुन्नबी)**

शायरी

मौलाना शिवली को बचपन ही से शे'र गोई से लगाव था। विद्यार्थी जीवन में उन्हें एक चादर की ज़रूरत महसूस हुई तो अपने पिता को यह शे'र लिख भेजा :

पिदर जिसका यों साहबे ताज हो
पिसर उसका चादर को मोहताज हो ?

उनके आरंभिक दौर के एक उस्ताद का कहना था कि एक रात एक बजे के

आसपास अचानक उनकी आँखें खुल गयीं तो देखा कि शिबली एक कोने मे बैठे हुए कुछ लिख रहे हैं। पूछने पर पता चला कि एक क़िता तारीख लिख रहे है।

समय के साथ-साथ उनकी यह अभिरुचि बराबर बढ़ती गयी। यहाँ तक कि उनकी शे'रगोई जीवन की मूल चिंता बन गयी और उनके समकालीनों ने भी उनकी कवित्व-शक्ति की सराहना की। मिसाल के तौर एक अवसर पर डिप्टी नज़ीर अहमद ने कहा था :

तुम अपनी वस्त्र को लो, नज़्म को छोड़ो नज़ीर अहमद
कि इसके वास्ते मौज़ूं हैं 'हाली' और 'नुअमानी'

एक मोटे अनुमान के अनुसार शिबली ने कमोबेश पाँच हज़ार शे'र कहे हैं और लगभग सभी काव्य-रूपों में लेखन किया है। तभी उनके यहाँ ग़ज़ल, क़सीदा, मसनवी, मर्सिया, मुसद्दस, तरकीब बंद, कता और आधुनिक काव्-रूपों सभी के नमूने मौजूद हैं। उन्हें यह दक्षता भी प्राप्त है कि उर्दू के अलावा फ़ारसी में भी उच्चकोटि की शायरी की है।

उर्दू शायरी

मौलाना शिबली की उर्दू शायरी में काव्य-मूल्यों और कलात्मक सौंदर्य की दृष्टि से मसनवी 'सुबहे उम्मीद' सर्वोत्कृष्ट है। इसका विषय सर सैयद और उनका सुधारवादी आंदोलन है। मसनवी की बहर वही है जो 'गुलज़ारे नसीम' की है। अब्दुल माजिद दरियाबादी के शब्दों मे, "अपनी गुणवत्ता के कारण यह उर्दू शायरी की चमकीली मिसाल है।" और "ऐसी बांकी ऐसी सजीली और ऐसी अलबेली है कि 'गुलज़ारे नसीम' और 'तराना-ए-शौक़' के समकक्ष प्रतीत होती है।"

नीचे इसके कुछ अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सर सैयद का परिचय कराते हुए लिखते हैं :

सूरत से अयां[1] जलाले शाही, चेहरे पे फ़रोगे[2] सुबह गाही
वो रेशे दराज़[3] की सुपेदी, छिटकी हुई चाँदनी सहर की
पीरी से कमर में एक ज़रा ख़म, तौक़ीर[4] की सूरते मुजस्सिम
वो मुल्क पे जान देने वाला वो क़ौम की नाव खेने वाला
उठते हुए जोश से बारिक़्क़त[5] है मर्सिया ख़्वाने क़ौमो मिल्लत
लब पर फ़ुगां[6] कि अब भी जागो ऐ ख़्वाबे गरां के सोने वालो
आख़िर कब तक ये ख़्वाबे गफ़लत उल्टो तो ज़रा निक़ाबे ग़फ़लत

मदरसतुलउलूम की योजना के क्रियान्वयन के लिए सर सैयद ने किस तरह जनता के सामने झोली फैलायी? इसका प्रभावशाली चित्रण देखिए :

---

1. प्रकट 2. प्रकाश 3. लम्बे बाल 4. प्रतिष्ठा 5. क्षोभ के साथ 6. आवाहन

वो कुश्ता-ए-क़ौम[1] वो फ़िदाई, उठा लिये कासा-ए-गदाई[2]
एक-एक से अर्जे हाल करता, दर-दर वो फिरा सवाल करता
हर बज़्मो हर अंजुमन में पहुँचा, हर बाग़ में हर चमन में पहुँचा
काविश[3] से गर्ज़ थी कुछ, न कद[4] से मिलता था हर एक नेको बद से
मर्दाने ख़ुदा परस्त से भी रिंदाने स्याहे मस्त से भी
ठहरा न जो गर्मे सेर[5] होकर काबे भी गया वो दैर[6] होकर
किस बज़्म में ये फ़ुगां न पहुँची आह उसकी कहाँ-कहाँ न पहुँची
नाले किये दाग़े दिल दिखाकर रोया कभी हाले ग़म सुनाकर

इस तमाम भाग-दौड़ के परिणामस्वरूप उन्हें जो प्रतिदान मिला। इसका मार्मिक वर्णन इन पंक्तियों में देखिए :

क्या-क्या न मुसीबतें उठाईं हर तरह की ज़िल्लतें उठाईं
नाकाम रहा सदाएँ देकर दुश्नाम[7] सुनी दुआएँ देकर
हंज़ल[8] पाये शकर के बदले संग उसको मिले गुहर के बदले
लाल उसने दिये शरार[9] पाये गुल नज़र किये तो ख़ार पाये
क्या तल्ख़ मिले जवाब उसको क्या-क्या न दिये ख़िताब उसको
बरगश्ता[10] कहा किसी ने दीं से लानत का सिला मिला कहीं से
ख़ुद क़ौम को हो गयी थी ये गद[11] ज़िंदीक[12] कहा किसी ने मुरदत[13]

कसीदा गोई से मौलाना शिबली को कोई विशेष लगाव नहीं था। लेकिन सुल्तान अब्दुल हमीद ख़ान की प्रशस्ति में उनके एक अधूरे क़सीदे के आरंभिक भाग से इस विधा से उनके घनिष्ठ परिचय और उर्दू भाषा पर असाधारण अधिकार का पता चलता है। इस आरंभिक भाग के कुछ शे'र नीचे उद्धृत हैं जिनमें वसंत का वर्णन है :

फिर बहार आई है, शादाब[14] हैं फिर दश्तो चमन[15]
बन गया रश्के गुलिस्ताने इरम[16], फिर गुलशन
शोलाजन फिर चमनिस्तां में हुई आतिशे गुल
फिर सबा[17] चलती है गुलशन में बचाकर दामन
आग पानी में लगा दी है किसी ने शायद
हौज़ में अक्से गुलो लाला है, या जलवा फ़ुगन[18]

1. हितैषी 2. भिक्षा-पात्र 3. वैमनस्य 4. स्वार्थ
5. जहाँ की जलवायु गर्म हो 6. मंदिर 7. अपशब्द 8. एक कड़वा फल
9. चिंगारी 10. सहसा 11. सनक 12. नास्तिक 13. इस्लाम से विमुख
14. प्रफुल्लित 15. वन और उपवन 16. स्वर्ग के उपवन से होड़ लगानेवाला
17. वायु 18. दर्शन देनेवाला

बाग़ में बादे बहारी की जो है आमद की धूम
बहर तस्लीम हरेक शाख़ की है ख़म गर्दन
मसनद आरा-ए-तजम्मुल[1] जो हुआ, शायद गुल
मुर्ग़ गुलशन ये सदा देते हैं 'अल मुल्को लिमन[2]
मस्तियाँ करती हुई फिरती है गुलशन में नसीम[3]
झूमते आते हैं बादल तरफ़े सेह्ने चमन
कोंदती बर्क़ है, घनघोर घटा छाई है
बूंदियाँ पड़ती हैं, चलती हैं हवाएँ सन सन
शाखें अंगड़ाइयाँ लेती हैं, सबा है बदमस्त
वज्द[4] में ताल लगाता है हरेक बर्गे समन[5]
वो उरुसाने चमन'[6] का वो निराला जोबन
नर्गिसे मस्त की वो महवे तमाशा[7] आँखें
वा[8] किया गुंचा-ए-गुल ने भी तबस्सुम से दहन[9]
बसकि हर ज़र्रा है एहसाँ तलबे बादे बहार
गर्द भी हाथ में थामे है सबा का दामन
चौंकते हैं जो कभी ख़्वाब से अतफ़ाले बहार[10]
थपकियाँ देती हैं सोने के लिए बादे चमन

मौलाना शिबली की उर्दू शायरी में नैतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक विषयों पर भी बहुत-सी नज़्में विद्यमान हैं। इनमें वे नज़्में जिनका स्वर व्यंग्यात्मक है, ज़्यादा सशक्त और महत्त्वपूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि वे व्यंग्य लेखन में कुछ बातों का विशेष ध्यान रखते हैं। एक तो यह विषय की कठिनाइयों का वर्णन देर तक और मज़े ले लेकर किया जाय। दूसरे यह कि खीज और भदेसपन पर उतर आने के बजाए विचारों की उत्तेजना पर पूरी तरह नियंत्रण रखा जाय। तीसरे यह कि व्यंग्य सपाट न हो, उक्ति वैचित्र्य से परिपूर्ण हो। इसी सिलसिले में यहाँ दो नज़्में प्रस्तुत की जा रही हैं। पहली नज़्म का शीर्षक है 'यूनिवर्सिटी डेपूटेशन।' इस नज़्म की पृष्ठभूमि यह है कि अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के कुछ प्रकरणों के निपटारे के लिए एक बैठक में यह निश्चित किया गया कि कुछ विशिष्ट सदस्यों का एक शिष्ट-मंडल वाइसराय के पास भेजा जाय। इस विचार का एक सज्जन ने सख़्त विरोध किया लेकिन जब उनका नाम भी शिष्ट-मंडल में शामिल कर लिया गया, वे तुरंत ठंडे पड़ गये। इस पर मौलाना ने यह नज़्म लिखी :

---

1. शृंगार से आपूरित 2. किसी हुकूमत ?
3. बाग़ 4. आनंदातिरेक 5. वृक्ष 6. नवजात कलियाँ
7. तमाशे में खोई 8. अनावृत्त करना 9. मुख 10. बसंत के शिशु

थी सफ़ारत[1] की जो तजवीज़ बज़ाहिर मौज़ूँ
अहले महफ़िल भी बज़ाहिर नज़र आते थे ख़मोश
दफ़अतन[2] दायरा-ए-सद्र[3] से उट्ठा एक शख़्स
जिसकी आज़ादी-ए-तक़रीर[4] थी ग़ारत गरे होश[5]
उसने इस ज़ोर से तजवीज़ पे की रिद्दो क़दह[6]
चौंक उट्ठे वो भी, जो बैठे हुए थे पंबा बगोश[7]
अहले मजलिस ने जो बदला हुआ देखा अंदाज़
डर हुआ ये कि कहीं और न बढ़ ख़रोश
सद्रे महफ़िल ने बुलाकर उसे आहिस्ता कहा
कि "तो हम शामिल वफ़्दसती व ई माय मजोश"[8]
बादा-ए-जामे-सफ़ारत मये मर्द अफ़गन था
एक ही जुरआ[9] में वो शैर जरी था, ख़ामोश
अब न वो तर्ज़ें सुख़न[10] था न वो आज़ादी थी
न वो हंगामा तराज़ी थी न वो जोशो ख़रोश
जिसकी तक़रीर से गूँज उठता था इजलास का हाल
अब वो एक पैकरे तस्वीर था, बिल्कुल ख़ामोश
सख़्त हैरत थी कि एक ज़र्रा-ए-ख़ाकस्तर[11] ने
वो शरारा जो अभी बर्क़[12] से था दोश बदोश[13]
देखते हैं तो हरारत[14] का कहीं नाम नहीं
हो गया शोला-ए-सोज़िंदा[15] भड़क कर ख़ामोश
अहले सरवत से ये कह दो कि मुबारक हो तुम्हें
लिल्ला उल हम्द अभी मुल्क में हैं राय फ़रोश

दूसरी नज़्म का तेवर राजनैतिक है। इसमें मुस्लिम लीग पर आपत्ति उठाते हुए सर सैयद की कांग्रेस विरोधी नीति की असफलता का उपहास किया है :

हरचंद लीग का नफ़्से वापसीं[16] है अब
इस हस्ती-ए-दो रोज़ा पे जिसको ग़ुरूर था
वो दिन गये कि बुत कदे को कहते थे हरम
वो दिन गये कि ख़ाक को दावा-ए-नूर था

---

1. दूत-कर्म 2. अचानक 3. मुख्य दायरा 4. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
5. अत्यत उत्तेजनापूर्ण 6. संदेह या आपत्ति 7. कान में रूई डाले हुए
8. हम आपको शिष्ट मंडल में शामिल किये लेते हैं 9. घूंट 10. कहने का ढंग
11. धूल का कण 12. बिजली 13. कंधे से कंधा मिलाये 14. ताप
15. गर्म अंगारा 16. आख़िरी साँस

वो दिन गये कि शाने गुलामी के साथ भी
हर बुलहवस[1] खुमारे सियासत में चूर था
वह दिन गये कि 'शारा अव्वल'[2] का हर्फ़ हर्फ़
हम पाया-ए-कलामे सुख़नगो-ए-तूर[3] था
वह दिन गये कि फ़ित्ना-ए-आख़िर ज़माँ के बाद
गोया कि अब इमामे ज़माँ का ज़हूर[4] था
अब मोतरफ़[5] हैं दीदावराने क़दीम भी
इस नक्श सीमिया[6] में नज़र का क़ुसूर था
इस दस्त मरतअश[7] में थी न क़ुव्वते अमल
इक कासा-ए-हती[8] ये सिर पर ग़ुरूर था
एक लम्आ-ए-सराब[9] न था चश्मा-ए-बक़ा[10]
ये तीरगी[11] थी, जिसको समझते थे नूर था
आईने बंदगी[12] में तमल्लुक़[13] की शान थी
इख़्लास व सिदक़ शायबा-ए-मक्रो ज़ूर[14] था
उनकी दुकान की वो हवा अब बिगड़ चली
जिनके घरों में जिंसे वफ़ा का वफ़ूर[15] था
अब ये खुला कि वाकिफ़े सिर था, इसी क़दर
जो जिस क़दर मुक़ामे तकर्रुब[16] से दूर था
हरदम बिरादराने वतन की बुराइयाँ
ज़ाहिर हुआ फि फ़िरना-ए-अरबाबे-ज़ूर था[17]
सब मिट गया सियासते सीसाला[18] का तिलिस्म
एक ठेस-सी लगी थी कि ये शीशा चूर था

फ़ारसी शायरी

उर्दू शायरी की तुलना में मौलाना शिबली की फ़ारसी शायरी अधिक प्राणवान तथा सशक्त थी। इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह कि उन्होंने फ़ारसी में ज़्यादा कहा बल्कि शे'र गोई की शुरुआत ही फ़ारसी से की। दूसरे फ़ारसी के शीर्षस्थ कवियों

---

1. लालची 2. धर्म का प्रथम निर्दिष्ट मार्ग 3. हज़रत मूसा का कलाम
4. प्रकट रूप 5. आदर करनेवाले 6. मिथ्या रूप 7. दुर्बल
8. एक हद तक 9. मृग तृष्णा 10. स्वर्ग का झरना 11. अंधकार
12. बंदगी की विधि 13. चापलूसी 14. झूठ-फ़रेब 15. अतिशयता
16. समीपता 17. ईश्वर के साथ फ़रेब करनेवाला 18. तीस वर्ष की राजनीति

के हज़ारों शे'र उनकी स्मृति में सुरक्षित थे। इसी फ़ारसी पर उन्हें फ़ारसी भाषी लोगों के समान अधिकार था। तीसरे वे उर्दू की तुलना में फ़ारसी में ज़्यादा जी लगा कर कहते थे।

स्वयं मौलाना को भी इसका अनुमान न था कि उनकी फ़ारसी की रचनाएँ उर्दू से बेहतर हैं। इसलिए उन्होंने उर्दू के मुक़ाबले फ़ारसी के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित किये। जिनमें फ़ारसी ग़ज़लों के 'दस्ता-ए-गुल' और 'बू-ए-गुल' शीर्षक संग्रहों को ज़्यादा प्रसिद्धि मिली। 'हाली' ने 'दस्ता-ए-गुल' के प्रकाशन के बाद उन्हें ये शब्द लिखकर भेजे थे :

> "मेरा इरादा था कि अपना फ़ारसी कलाम नज़्म और नस्र जो कुछ है, उसको भी छपवा कर शाया कर दूँ मगर 'दस्ता-ए-गुल' देखने के बाद मेरी ग़ज़लें ख़ुद मेरी नज़र से गिर गयीं।"

और हसरत 'मोहानी' ने इन ग़ज़लों की प्रशंसा इन शब्दों में की थी :

> "ख़ूबी-ए-मज़ामीन और पुख़्तगी-ए-मुहाविरा के जैसे पसंदीदा नमूने 'दस्ता-ए-गुल' व 'बू-ए-गुल' की ग़ज़लों में मौजूद हैं, इसकी मिसाल पूर्ववर्तियों में मिर्ज़ा 'ग़ालिब' मरहूम के सिवा और किसी शायर के कलाम में मुश्किल से मिलेगी। मिर्ज़ा ग़ालिब के मानिंद अल्लामा शिबली के कलाम में भी हिंदुस्तानियत का मुतलक़ असर नहीं पाया जाता।"

उनकी फ़ारसी शायरी से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

हर जा कि रूए रोशने तू जलवा साज़ बूद
हर ज़र्रा रा नजर बजमाले तू बाज़ बूद
हर जा हदीसे फ़ितना-ए-अय्याम कर्दा ईम
रूए सुख़न ब आँ निगहे फित्ना साज़ बूद
जाना ! ज़ुबानो लब न श्वद तर्जुमाने शौक
मारा उमीदहाज़ निगह-हाय राज़ बूद
मस्तूरो रिंद हैच यके सरबरूँ न बुर्द
जाँ हल्क़ा-हा कि दर ख़मे ज़ुल्फ़े दराज़ बूद
माख़ुद सारे ब-रिंदी-ओ-मस्ती न दाशतीम
ईं हा गुनाहे दीदा-ए-माशूक़ा बाज़ बूद
ब-निगर कि चूँ ब-दामे हवादिस असीर शुद
आँ दिल कि साया परवरे ज़ुल्फ़े दराज़ बूद
ग़मगीं मवाश गर सुख़न अज़ मुद्दआ न रफ़्त
'शिबली' ! हनोज़ अव्वले राज़ो-नियाज़ बूद

—जिस जगह तेरे दीप्त मुख का सौंदर्य प्रकट होता था, वहाँ कण-कण तेरी अलौकिक सुंदरता की ओर निहारता रहता था। जहाँ-जहाँ हमने समय की आपदाओं की कहानी सुनी है, वहाँ-वहाँ हमारे सोच की दिशा आपदाएँ उपस्थित करनेवाले की ओर ही रही थी। हे प्रिय! मेरी वाणी और मेरे होंठ मेरी भावनाओं को प्रकाशित नहीं कर सकते थे क्योंकि हमारी दृष्टि प्रेम के रहस्य की ओर लगी हुई थी। तेरे घुँघराले केशों की वक्रता से बड़े-बड़े रिंद और मस्त भी विद्रोह नहीं कर सके अर्थात् उन पर मोहित हुए बिना नहीं रह सके। हम मदिरापान और स्वच्छंदता से विरक्त नहीं होना चाहते थे क्योंकि ये सारे दोष तेरी आँखों की गहराइयों में डूब-डूब हो जाते हैं। जब तू घोर विपत्तियों के जाल में घिर जाय तब देख कि तेरा मन प्रिय के लम्बे केशों में उलझा हुआ था। अगर तेरी बात का प्रयोजन पूरा नहीं हुआ है तो दुःखी न हो। ऐ शिबली! यह तो प्रेम की अभी शुरूआत ही हुई थी।

वक़्ते सहर कि आरिज़े-ऊ-बेनिक़ाब बूद
दर बज़्म मश अव्वल आं कि रसीद आफताब बूद
बज़्मे शराबो शाहिदे रंगीन व बांगे ने
ईं हर्फ़े अज फ़साना-ए-अहृदे शबाब बूद
अंदाज़ा दाने हौसला हर किसे-सत् दोस्त
बा दीगरां ब लुत्फ़ो ब मा दर अताब बूद
शब बूद व सद हज़ार तमाशाए दिल फ़रेब
सुबह अज़ कराना सर ज़दो दीदम कि ख़्वाब बूद
नाज़े गुलरे हुस्न न दादश इजाज़ते
वरना सवाले बोसा-ए-मारा जवाब बूद
'शिबली' ख़राब कर्दा-ए-चश्मे ख़राबे ओस्त
तू दरगुमां कि मस्ती-ए-ऊ अज़ शराब बूद

—सुबह के समय जबकि उसके गाल बेनकाब थे, सबसे पहले जो उसकी महफ़िल में आया वह सूरज था। शराब की महफ़िलें और बाँसुरी की सुरीली आवाज़, ये सब बातें यौवन का संकेत थीं। मेरा प्रिय हरेक के साहस का अनुमान कर लेता था। वह ग़ैरों के साथ तो आत्मीयता के साथ पेश आता रहा और मेरे प्रति कठोर बना रहा। कल रात हज़ारों मन को लुभानेवाले तमाशे दिखाई दिये लेकिन सुबह जब सोकर उठा तो देखा कि स्वप्न था। सुन्दरता के अभिमान ने उसे जवाब तक देने की अनुमति नहीं दी। वरना मैंने जो एक चुम्बन का सवाल किया था, इसका जवाब तो उसके पास था। उसकी ख़राब आँखों ने शिबली तुझे भी खराब कर दिया था। तुझे यह भ्रम था कि उसकी आँखों की मस्ती शराब की वजह से है। ('ख़राब आखें' का प्रयोग फ़ारसी शायरी में मदभरी आँखों के लिए

किया जाता है।)

नसीमे सुबह! वया राहते बा जां बरसां
पयामे बंदा बा आं ख़ाके आस्तां बरसां
वफ़ूरे शौक़ शकेबा नमी तवानद शुद
रवा मदार दिरंगो हमीं जमां बरसां
बा आस्ताना-ए-ऊ सर ने व ज़िरुए अदब
दरूद गोए व दुआयम जमां जमां बरसां
वगोकि वर तवके वादा हाए पैं दर पै
बया व मरतबा-ए-मा बा आस्मां बरसां
सलाम-ए-शौक़ो तमन्ना ज़ बंदा 'नूअमानी'
बा साकिनाने दरे ऊ यगां यगां बरसां

—ऐ सुबह की हवा आ और मेरे प्रिय को सुख पहुँचा। मुझ प्रेमी का संदेश उस चौखट की धूल तक ले जा। अब मेरी व्यग्रता को किसी भी तरह धैर्य नहीं आ सकता। तू मेरी भावनाओं में अपना रंग न मिला बल्कि इन्हें इसी रूप में वहाँ तक पहुँचा दे! जब तू वहाँ पहुँचे तो उसकी चौखट पर आदर के साथ अपना सिर रख दे। दरूद पढ़ और दुआ माँग। उससे कहना कि उसने मुझसे जो वायदे पर वायदे कर रखे हैं। वह आये और मेरे सम्मान को आकाश तक ऊँचा उठा दे। मेरी अभिलाषाएँ पूरी कर दे। इस 'शिबली' की प्रेम भावनाएँ उसके दर पर रहनेवाले हर व्यक्ति तक पहुँचा दे।[1]

अलग-अलग ग़ज़लों के चार शे'र और देखिए—

दिल रा बा ईं फ़रेब तसल्ली दहम कि यार
बा मा अज़ां न साख़्त कि कार आशना न बूद

हर्फ़े इंकार ज़-ख़ूबां हमा अज़ दिल न बूद
गह गह ईं कार व आईने हया नेज़ कुनंद
मन फ़िदा-ए बुत शोख़े कि बा हंगामे विसाल
बा मन आमूख़्त ख़ुद आईन हम आग़ोशी रा

ईफ़ाए वादा साज़ कि माहम वफ़ा कुनीम
आं वादा हा कि बा-दिले नाकाम करदा ईम

1. इन तीनों फ़ारसी ग़ज़लों का हिंदी अनुवाद प्रो. डॉ. क़मर रईस (उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) से हुई बातचीत पर आधारित है।

पत्र

पत्रों को भी साहित्य की विश्वसनीय विधा की कोटि में रखा जाता है बशर्ते कि उनमें साहित्यिक और रोचकता के तत्त्व विद्यमान हों। मौलाना शिबली के पत्र भी इस निकष पर खरे उतरते हैं। वे उर्दू भाषा के उन विशिष्ट रचनाकारों में से रहे हैं जिनके पत्र साहित्य की एक बड़ी रिक्ति को पूरा करते हैं। उनके पत्रों से उनकी जीवनी, अभिरुचियाँ, व्यस्तताएँ और विभिन्न भाषाओं के रुझानों के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। मौलाना के पत्रों के तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—

(1) मकातीबे शिबली (पहला भाग), (2) मकातीबे शिबली (दूसरा भाग), (3) ख़ुतूते शिबली।

उपर्युक्त दोनों संग्रहों के सम्पादक मौलाना सैयद सुलेमान नदवी हैं और तीसरा संग्रह मुंशी मोहम्मद अमीन जुबेरी द्वारा सम्पादित है।

इन सग्रहों का वाचन करने से अनुमान होता है कि पत्र-लेखन की उनकी कोई निश्चित शैली नहीं थी बल्कि आमुख व्यक्ति के स्तर और रुचि के अनुसार उनकी शैली बदलती रहती थी। कभी विस्तृत पत्र लिखते, कभी एक-दो पंक्तियों में ही अपनी बात समेट लेते। जिस तरह साधारण जीवन में मर्यादित और संतुलित रहते थे उसी तरह पत्र लिखने में एहतियात बरतते थे। अलबत्ता जिन मित्रों से उनके अनौपचारिक सम्बन्ध थे, उन्हें पत्र भी औपचारिकताओं से मुक्त होकर लिखते थे। बानगी के लिए यहाँ कुछ पत्रों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

अपने अनुज मोहम्मद मेहदी के आकस्मिक निधन पर अपने एक स्नेही मौलवी मोहम्मद समीअ को लिखते हैं—

"लो भाई, हममें का एक उंसुर[1] कम हो गया। अज़ीज़ मेहदी ने जान दी और किस हालत के साथ कि कलेजे के टुकड़े उड़ गये। मैं बदबख़्त[2] पास था और इसलिए जितने तीर फेंके मेरे ही जिगर पर लगे। हाय! उसकी जवाना मर्गी[3], हाय! क्या मालूम था कि वह इस क़दर जल्द दुनिया से चला जायेगा। वरना मुझपर लानत अगर मैं उससे नाराज रहता। हाय! सब बुराइयों पर वह सबसे अच्छा था। आज चौथा दिन है। लेकिन ख़ुदा की क़सम इस वक़्त तक दिल नहीं ठहरता। उसकी एक मेहबूब यादगार है, जिसको वह बब्बन कहता था यानी शाफ़िया, उससे बारहा लिपटकर रोया हूँ लेकिन कुछ भी तसल्ली नहीं होती। उसको तसल्ली देता हूँ लेकिन ख़ुद बेक़रार हो जाता हूँ। एक और उसके नाम से वाबस्ता बदक़िस्मत है, जो पहले छोटी भावज थी लेकिन अब प्यारी बहन है। तुम लोग मज़े से बाहर

1. तत्त्व 2. दुर्भाग्यपूर्ण 3. युवावस्था में मृत्यु

हो। आफ़तज़दों को सँभालना मेरे सिर पर छोड़ा है। हाय मेहदी ! वाय मेहदी !"

मौलाना सैयद अब्दुल हई हसनी नदवतुलउल्मा के कार्यालय व्यवस्थापक को लिखते हैं—

"मौलाना !"

बावजूद तमाम माइब के जो मुझमें मौजूद है, यह ग़ालिबन आप जानते होंगे। मैं दुनिया साज़ी नहीं जानता और झूठी ख़ुशामद नहीं करता, इसलिए जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा।

मुझको मालूम हुआ कि आपको इस बात से मेरी इनानियत[1] का ख़्याल पैदा हुआ कि मैंने आपको कोई ख़ास ख़त नहीं लिखा बल्कि अब्दुस्सलाम वग़ैरह को लिखता रहा।

मौलाना ! ख़ुदा शाहिद है, उसका कोई ताल्लुक़ आपकी शान की कमी से नहीं। कोई वजह न थी कि ख़ास आपको लिखता। मैं जो आपकी वक़अत करता हूँ वाख़ुदा आप उससे वाक़िफ़ नहीं।

आपके अल्लवे-निस्ब[2], आपकी मज़हबी ज़िंदगी, ईसारे नफ़्स[3] और महासिने अख़्लाक़[4] का मुझपर जो असर पड़ा है, उसके लिहाज से मैं अपने आपको एक ख़ादिम समझता हूँ। मैं अपनी निस्बत गो कितना ही मग़रूर हूँ लेकिन यह समझता हूँ कि एक दुनियादार शख़्स हूँ, गुनहगार हूँ, बदअख़्लाक़ हूँ। इसलिए मुझको मुक़द्दस और बदगज़ीदा असहाब[5] से क्या निस्बत ? अफ़सोस है कि आपको ऐसा ख़्याल हुआ। मैं शिकस्तापाई[6] की वजह से मजबूर हूँ वरना हाजिर होता और ऐसे ख्यालात का मौक़ा न मिलता। उम्मीद है कि आप ऐसे ख़्यालात दिल से निकाल देंगे।"

मेहदी अफ़ादी को अतिया फ़ैज़ी के बारे में लिखते हैं—

"बम्बई का मेहमान हुस्ने इत्तफ़ाक़ से आजकल यहीं है। यह लफ़्ज़ यानी इसका पहला जुज़[7], कभी इससे उम्दातर मौक़े पर इस्तेमाल नहीं हुआ होगा। लेकिन बदक़िस्मती देखिए कि नदवा के बदमज़ा कामों ने दिमाग़ को इस क़दर इब्तर[8] कर दिया कि ऐसे मौक़े से भी फ़ायदा नहीं उठा सकता। न वक़्त न दिमाग़। हसरत का भी इससे बढ़कर मंज़र दुनिया ने न देखा होगा। इन सोहबतों में उसकी क़ाबिलियत के हैरत अंगेज़ पहलू नज़र से गुज़र रहे हैं। उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, ज़ुबानदानी, मुसव्वरी[9], नक़्शा-कशी, पॉलिटिक्स, क़ुव्वते तक़रीर—

आंचे आलम हमा मी दाश्त तो तनहादारी[10]

1. घमंड 2. कीर्तिमान 3 उदारहृदयता 4. शिष्ट आचरण 5. पवित्र और विशिष्ट सज्जन 6. विकलांगता (पैर टूटना) 7. भाग 8. विकृत 9. चित्रकारी 10. तमाम आलमों को एक जगह रख दो लेकिन तो भी तुम अकेले ही हो। तुम्हारा कोई सानी नहीं।

"अफ़सोस ! ग़ैरत और मोहब्बत की कशाकश थी, वरना आप भी वह देखते, जो मैं कहता हूँ।"

यह ख़त भी मेहदी अफ़ादी ही के नाम है —

"....'सीरत' में निहायत तनक़ीद और जांफ़िशानी[1] से काम ले रहा हूँ। इसलिए हफ़्तों में दो-तीन सफ़हों का सामान हाथ आता है। साल-ए-अव्वल हिजरत लिख चुका हूँ लेकिन अभी नक़्शे अव्वल है। नज़र सानी[2] में कुछ-से-कुछ हो जायेगा। बाज़ निहायत सख़्त मरहले[3] तय हो गये।

'शे'रुल अजम' अब कहाँ ? एक आँख में पानी उतर आया। दूसरी भी ज़ईफ़ हो गयी। 'सीरत' पर ख़ात्मा हो जाये तो हुस्ने ख़ात्मा है। क़ुरान में है कि यहूदी ज़लील और ख़्वार हो गये लेकिन क्या 5 दिसम्बर '12 के बाद भी, जिस दिन (अतिया) एक यहूदी को हाथ आयी। मशहूर किया गया है कि वह मुसलमान हो गया। इसलिए तो नहीं है कि —

मैं हुआ काफ़िर तो वह काफ़िर मुसलमां हो गया

ख़ैर—

"सबहा रा ज़ुन्नार कद दस्तो कुनद।"[4]

यात्रा-वृत्तान्त

1892 ई० में मौलाना ने रोम, सीरिया और मिस्र की यात्रा की थी। उन्होंने इस यात्रा के अनुभवों को 'सफ़रनामा-ए-रोमो मिस्रो शाम' नाम से प्रकाशित की। इस यात्रा-वृत्तान्त की गणना यद्यपि उनकी शोध परक कृतियों के अंतर्गत नहीं की जाती लेकिन यह इस दृष्टि से पठनीय है कि इससे विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति उनके दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है। मिसाल के तौर पर तुर्कों से मौलाना की आत्मीयता, इस्लामी देशों से मित्रता की आकांक्षा, स्त्रियों की शिक्षा और जनता के बारे में उनके दृष्टिकोण तथा नये-पुराने मूल्यों के सामंजस्य से सम्बन्धित उनके विचारों को यदि विस्तार से जानना हो तो यात्रा-वृत्तान्त का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ान शेरवानी ने इस पर विचार करते हुए लिखा था—

"जो ख़ूबी इस सफ़रनामे के साथ मख़सूस है वह यह है कि इस्लामी परिवेश को इस तरह से देखा गया है, जैसे कि लेखक उसी के बीच रहा हो। इस ज़माने में सफ़र करनेवाले हालाते सफ़र लिखनेवाले बहुत, लेकिन वे क़ुस्तुंतुनिया और काहिरा को ऐसी दिलचस्पी और नज़र से देखते हैं जो इस

---

1. जी-जान से कोशिश करना 2. पुनर्दृष्टि 3. कठिनाइयाँ 4. मेरी तस्बीह को उसने जनेऊ बना दिया।

ज़माने का तकाज़ा है, वे उन शहरों की यात्रा करके अपने निष्कर्ष निकलते हैं, उस तासीर से महज़ बेख़बर रहते हैं, जो इस परिवेश का हरेक ज़र्रा एक मुसलमान दिल पर करता है। नामावर यायावर ने एक मुसलमान शोध-कर्ता की दृष्टि से इन मुल्कों को देखा और मुसलमानों की दिलचस्पी की बेहद सामग्री अपने यात्रा वर्णनों में उपलब्ध करायी है।"

ख़ुत्बे[1] और भाषण

मौलाना शिबली को लेखन की तरह भाषण का कौशल भी प्रकृति प्रदत्त था। वे अपने दौर के विख्यात वक्ताओं में शुमार किये जाते थे। उनके भाषण चिंतनपूर्ण, सन्तुलित और साहित्यिक संस्पर्श लिये हुए होते थे। मोहम्मडन एंग्लो एजुकेशनल कांग्रेस और नदवतुल उलमा के वार्षिक सम्मेलनों में उन्हें अक्सर भाषण के अवसर मिलते थे। उनके भाषण तात्कालिक हुआ करते थे इसलिए उनमें से अधिकांश अब सुरक्षित नहीं हैं। जो सुरक्षित और उपलब्ध हैं, वे 'ख़ुत्बाते शिबली' और 'बाक़ियाते शिबली' के में सम्मिलित कर लिये गये हैं। यहाँ नमूने के लिए एक भाषण-अंश उद्धृत किया जा रहा है। लखनऊ में आयोजित एक सभा में राष्ट्रीय एकता पर बल देते हुए कहते हैं :

"हज़रात ! बहुत दिन नहीं हुए कि हम पर यह ज़माना गुज़रा है कि अपने साहित्य में, विचारों में और रोज़मर्रा ज़िंदगी में इस तरह के भेद-भाव से वाक़िफ़ नहीं थे। बचपन से हमारे बच्चे 'दस्तूर उल सबियान' पढ़ते थे, जो लाला नोनध राय की पुस्तक है और देहली की मशहूर 'मस्नवी मीर हसन' जब इसका जवाब लखनऊ के लोग पेश करते थे तो 'गुलज़ारे नसीम' को पेश करते थे। जो लोग फ़ारसी ज़ुबान के माहिर और कामिल होना चाहते थे, वे 'बहारे अजम', जो टेकचंद 'बहार' की पुस्तक है और 'मुस्तलहातुल शौरा' की तरफ़ आकृष्ट होते थे जो एक हिन्दू की रचना है। और कभी लोगों ने नहीं कहा कि यह हिन्दू लेखक हैं या दूसरी क़ौम के लोग हैं। इस तरह की ऐक्य-भावना साहित्य में थी और जीवन की तमाम बातों में। अगर किसी वजह से विभेद पैदा हो भी गया तो दूसरी स्थितियों में क्यों न मिल-जुलकर काम करें ? इसलिए मुझको जो चीज़ विजय की भूमिका जैसी मालूम होती है वह यह कि दोनों सम्प्रदाय इस काम में शरीक हैं और निहायत दिलचस्पी से काम कर रहे हैं। हक़ीक़त में अगर सच पूछिये और हमारे दोस्त बुरा न मानें तो मैं कहूँगा कि इस सौहार्द्र का श्रेय हिन्दू दोस्तों को देना चाहिए। इसलिए

1. धार्मिक वक्तव्य

कि मुझे सन्देह है कि अगर वे इस क़िस्म की कोई 'कांफ्रेंस' क़ायम करते तो हम ऐसी उदारता के साथ शरीक होते या नहोते।"

लेख और टिप्पणियाँ

मौलाना शिबली ने व्यवस्थित पुस्तकों के अतिरिक्त सामयिक विषयों पर अनेक लेख एवं टिप्पणियाँ भी लिखी हैं। इनसे उनके अध्ययन की व्यापकता और सामयिक घटना-प्रवाह से जुड़ाव का अनुमान होता है। ये लेख देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं जैसे अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गज़ट, मारफ़ अलीगढ़, तहज़ीबुल अख्लाक़, दकन रिव्यू हैदराबाद, अलनदवा लखनऊ, और मुस्लिम गज़ट लखनऊ में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

मौलाना के जीवन में ही उनके दो संकलन प्रकाशित हो चुके थे। एक 'रिसाला-ए-शिबली' के नाम से और दूसरा 'मक़ालाते शिबली' के शीर्षक से। पहले संकलन में निम्नलिखित लेख सम्मिलित हैं:

इस्लामी हुकूमतें और शफ़ाख़ाने, इस्लामी कुतुबख़ाने, तराजिम अल जजिया, इस्लामी मदारिस, हुक़ूक़ूल जिमींयीन, मैकेनिक्स और मुसलमान।

दूसरे संकलन में भी शिक्षा तथा इतिहास सम्बन्धी बहुत-से लेख सम्मिलित हैं जिनमें से हिन्दुस्तान में इस्लामी तमद्दुन का असर, मुसलमानों की इल्मी बेतास्सुबी और अल मौतज़ला व अल ऐतज़ाल आदि प्रमुख हैं। इन दोनों संकलनों के अलावा भी उनके बहुत-से लेख एवं टिप्पणियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में बिखरे हुए थे। इसलिए मौलाना के शागिर्दों में मौलाना मसूद अली नदवी और मौलवी मुईनुद्दीन क़िदवाई ने नये-पुराने तमाम लेख विषयवार नये क्रम के साथ आठ भागों में 'मक़ालाते शिबली' के नाम से संग्रहीत कर दिये हैं। वर्तमान रूप में इनका क्रम इस प्रकार हैं:

मक़ालाते शिबली	(पहला भाग)	धार्मिक लेख
मक़ालाते शिबली	(दूसरा भाग)	साहित्यिक लेख
मक़ालाते शिबली	(तीसरा भाग)	शैक्षिक लेख
मक़ालाते शिबली	(चौथा भाग)	आलोचनात्मक लेख
मक़ालाते शिबली	(पाँचवाँ भाग)	जीवनीपरक लेख
मक़ालाते शिबली	(छठा भाग)	ऐतिहासिक लेख
मक़ालाते शिबली	(सातवाँ भाग)	दार्शनिक लेख
मक़ालाते शिबली	(आठवाँ भाग)	राष्ट्रीय एवं अख़बारी लेख

इन लेखों की गुणवता एवं सोद्देश्यता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि उर्दू निबन्ध-रचना के विकास में 'मक़ालाते शिबली' का अविस्मरणीय योगदान है।

अंजुमन-ए-तरक्क़ी-ए-उर्दू

साहित्य जगत के लिए 'अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू' का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं। विभिन्न दौरों में इसकी शैक्षिक और साहित्यिक सेवाओं से विद्वान परिचित हैं। 1903 ई० दिल्ली में आयोजित 'मुस्लिम एजुकेशनल कांफ्रेंस' की एक सभा में 'कांफ्रेंस' के एक विभाग के रूप में इसकी स्थापना हुई थी। इस अवसर पर प्रो. आर्नल्ड अध्यक्ष, डिप्टी नज़ीर अहमद, मौलवी ज़का अल्लाह और मौलाना हाली उपाध्यक्ष और मौलाना शिबली को सचिव निर्वाचित किया गया था। यह मौलाना के हैदराबाद-प्रवास का समय था। इस समय से लेकर वे जब तक हैदराबाद में रहे सचिव पद के दायित्वों का निर्वाह करते रहे। इस दौरान उन्होंने अंजुमन के लिए सदस्यता अभियान चलाया। अरबी, फ़ारसी और अंग्रेज़ी से उर्दू में बहुत पुस्तकों के अनुवाद कराये और अंजुमन की ओर से बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित करायीं। अंजुमन के सचिव की हैसियत से मौलाना की दूसरी गतिविधियों को विस्तार से जानना हो तो '*वाक़ियाते शिबली*' का अध्ययन करना चाहिए जिसमें अंजुमन से सम्बन्धित मौलाना की मासिक रिपोर्टें सम्मिलित कर दी गयीं हैं।

समापन

मौलाना के कृतित्व के सन्दर्भ में, जिसकी पिछले पृष्ठों में विस्तृत चर्चा की गयी है, यह कहना अनुचित न होगा कि वे एक असाधारण व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में ऐसे बहुत-से श्रेष्ठ गुण विद्यमान थे, जो अलग-अलग भी बहुत कम लोगों में मयस्सर होते हैं। वे सिर्फ़ इतिहासकार ही नहीं, इतिहास निर्माता भी थे। लेखक ही नहीं, लेखक निर्माता भी थे। उन्होंने अर्थ और यश की प्राप्ति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने के बजाए राष्ट्रीय और धार्मिक भावना के प्रचार में अपना जीवन व्यतीत कर दिया। उनमें श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों और प्राचीन पूर्वी संस्कृति का सामंजस्य था। उनकी शैक्षिक एवं साहित्यिक कृतियाँ उर्दू भाषा और साहित्य की मूल्यवान सम्पत्ति हैं। वे अपने प्रतिष्ठित समकालीनों में सबसे छोटे थे, आयु भी कम पायी लेकिन साहित्यिक और सामाजिक उपलब्धियों की दृष्टि से उनका स्थान बहुत ऊँचा है। प्राचीन और आधुनिक के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण भी ध्यान देने योग्य है। यह सतही और सरसरी नहीं, गहरे चिंतन और मनन का परिणाम है। इस चर्चा को हम मौलाना सैयद सुलेमान नदवी के एक उद्धरण पर समाप्त करते हैं, जिसमें उन्होंने अपने प्रिय उस्ताद के महत्त्वपूर्ण अवदान को सार-रूप में प्रस्तुत कर दिया है। लिखते हैं :

"दुनिया की तमाशागाह में जो जौहर उन्होंने दिखाया, यक़ीन है कि दुनिया, एक ज़माने तक उसकी मिसाल पेश नहीं कर सकेगी—

शिबली ज़िख़ीले ज़मज़मा संजां हशम गिरफ़्त
बा ईं कि हेच गो न ज़िख़ीलो हशम न दाश्त

मौलाना से ईर्ष्या रखनेवाले तलवार का सिर्फ़ एक ही वार जानते थे। या तो वे धर्मशास्त्री थे या दार्शनिक। या मात्र गद्यकार, या अधिकारी वक्ता या प्रसिद्ध लेखक। लेकिन उसमें ज्ञान और कला की इन सब विशेषताओं का एकत्र समाहार था। जिस रास्ते पर क़दम रखा, मैदान में सबसे आगे नज़र आया। धार्मिक तथा पौर्वात्य विद्याओं में जो दृष्टि उसके पास थी, उससे आधुनिक लेखक वंचित थे और प्राचीन लेखक आज के ज्ञान से अनभिज्ञ थे। इस बाज़ार में इतिहास का वह अकेला जोहरी था। शायरी का भी वह अद्वितीय उस्ताद था। गद्यकार के रूप में भी उसकी पहचान अलग थी। गद्य लेखन और भाषा-निर्माण के क्षेत्र में सिर्फ़ उसी का सिक्का चलता था। शे'रो शायरी उसके चेतना रूपी पक्षी के पर थे।

उसमें दूसरी विशेषता यह थी कि वह सिर्फ़ दिमाग़ न था, हाथ भी था। जातीय या राष्ट्रीय आंदोलनों के परिणामों पर जहाँ उसकी नज़र पहुँची, ईर्ष्यालु लोग उसे देख पाने में भी असमर्थ थे। उसका दिमाग़ जिन धार्मिक कामों का मंज़र देखता था और दिखाना चाहता था, बहुत-सी आँखें उसे देखने का सामर्थ्य भी नहीं रखती थीं। राष्ट्रीय, शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक—कहने का मतलब है कि कर्म-क्षेत्र का कोई कोना न था, जिसकी तरफ़ उसका हाथ न बढ़ा।"

परिशिष्ट—I

सूचना-सामग्री

हयाते शिबली : मौलाना सैयद सुलेमान नदवी
यादगारे शिबली : शेख़ मोहम्मद इकराम
शिबली : एक दबिस्तां : आफ़ताब अहमद सिद्दीक़ी
शिबली का मरतबा उर्दू अदब में : अब्दुल लतीफ़ आज़मी
शिबली : नक्क़ादों की नज़र में : सम्पादक : नाज़ सिद्दीक़ी